तिरुक्कुऱळ् पयिल्वोम्

(Hindi)

काशी तमिल संगमम 5.0

“तिरुक्कुऱळ् पयिल्वोम् - तिरुक्कुरल अभ्यास करें”

Translator

डॉ. पि.सरस्वती

केंद्रीय शास्त्रीय तमिऴ् संस्थान, चेन्नै

2026

विषय-सूची

अध्याय 1 - काशी और तमिऴ्नाडु 03

अध्याय 2 - तिरुवळ्ळुवर् का जीवन-परिचय 06

अध्याय 3 - तिरुक्कुरळ् ग्रंथ की संरचना एवं विशिष्टताएँ 09

अध्याय 4 - टीकाकार एवं तिरुक्कुरळ् के प्रकाशन का इतिहास 13

अध्याय 5 - दिव्य वेद वळ्ळुववाद 14

5.1. तिरुक्कुरळ् में प्रेम और सदाचार 14

5.2. तिरुक्कुरळ् में अतिथि-सत्कार 19

5.3. तिरुक्कुरळ् में जीव-प्रेम 22

5.4. तिरुक्कुरळ् में संन्यास एवं त्यागमय जीवन 25

5.5. तिरुक्कुरळ् में व्यक्तिगत आचरण 27

5.6. तिरुक्कुरळ् में आत्मविश्वास संबंधी विचार 29

5.7. तिरुक्कुरळ् में शिक्षा 32

5.8. तिरुक्कुरळ् में नेतृत्व के गुण 34

5.9. तिरुक्कुरळ् में शारीरिक स्वास्थ्य 36

5.10. तिरुक्कुरळ् में चिकित्सा-नीति 38

5.11. तिरुक्कुरळ् में मानसिक स्वास्थ्य से संबंधित जीवन-मूल्य 40

5.12. तिरुक्कुरळ् में मानवतावाद 42

5.13. तिरुक्कुरळ् में सामाजिक सद्भाव 44

5.14. तिरुक्कुरळ् में मित्रता 46

5.15. तिरुक्कुरळ् में राजनीति 48

5.16. तिरुक्कुरळ् में प्रशासनिक दक्षता 49

5.17. तिरुक्कुरळ् में आर्थिक विचार 51

5.18. तिरुक्कुरळ् में कृषि 53

5.19. तिरुक्कुरळ् में पर्यावरण 55

5.20. तिरुक्कुरळ् में पारिवारिक सदाचार 57

5.21. तिरुक्कुरळ् में नारी 59

5.22. तिरुक्कुरळ् में प्रबंधन 61

5.23. विश्व की भाषाओं में तिरुक्कुरळ् 63

अध्याय 6 - कुरळ्-मणिमाला 64

अध्याय - 1
काशी और तमिऴ्नाडु

काशी और तमिऴ्नाडु के बीच अत्यंत प्राचीन एवं दीर्घकालीन ऐतिहासिक संबंध रहा है। काशी, अर्थात् वाराणसी, के संबंध में तमिऴ् के शास्त्रीय साहित्य में अनेक उल्लेख मिलते हैं। *कलित्तोगै, शिलप्पदिकारम्, मणिमेकलै, नीलकेशी, चूळामणि, पेरुङ्कदै, विल्लिभारतम्, तेवारम्, पॆरियपुराणम्, नालायिर दिव्यप्रबंधम्, तिरुप्पुग़ऴ्, शिवभोगसारम्, तिरुविळैयाडल् पुराणम्, काञ्चीपुराणम्, शिवज्ञानपालैय स्वामिगळ् कलम्बकम्, तिरुवरुट्पा, वीरपांडिय कट्टबोम्मन् कदैप्पाडल्, भारती की कविताएँ, कविमणि की 'मलरुम् मालैयुम्'* आदि रचनाओं में काशी से संबंधित अनेक समाचार एवं संदर्भ मिलते हैं। इनके अतिरिक्त, अभिलेखों और ताम्रपत्रों में भी इसके प्रमाण उपलब्ध हैं। *काशी कलम्बकम्, काशी तुंडिविनायक पतिकम्, काशी काण्डम्, काशी रहस्यम्, काशी यात्रा, काशी माहात्म्यम् अथवा सिंहध्वजन् कथा, काशी विश्वनाथ शतकम्, श्रीकाशी यात्रा दीपम्* आदि ग्रंथ भी काशी को केंद्र में रखकर रचे गए हैं। इस प्रकार काशी और तमिऴ्नाडु के बीच युगों से चले आ रहे संबंधों को समझा जा सकता है।

इसी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में ऐतिहासिक संबंधों का पुनर्स्मरण एवं पुनराविष्कार करना, दोनों ज्ञान-परंपराओं को एक स्थान पर लाकर देखना, उनके बीच विद्यमान संबंधों को साझा करना, दीर्घकाल से चली आ रही सभ्यतागत एवं सांस्कृतिक निरंतरता को उजागर करना, 'एक भारत–श्रेष्ठ भारत' की संकल्पना के माध्यम से विभिन्न सांस्कृतिक परंपराओं से परिचित कराते हुए राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करना, ज्ञान के आदान-प्रदान को प्रोत्साहित करना, राष्ट्रीय स्तर पर तमिऴ् भाषा तथा शास्त्रीय तमिऴ् साहित्य का परिचय कराना, युवाओं को भारतीय सांस्कृतिक विरासत से जोड़ना तथा प्रौद्योगिकी के माध्यम से भारतीय भाषाओं के बीच भाषायी संबंधों का समन्वय करना—इन विभिन्न उद्देश्यों को आधार बनाकर भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय द्वारा काशी तमिऴ् संगमम् का आयोजन किया जा रहा है।

काशी और तमिऴ्नाडु के बीच विद्यमान संबंधों को स्पष्ट करने के उद्देश्य से अब तक चार काशी तमिऴ् संगमम् आयोजित किए जा चुके हैं। इनके केंद्रीय विषय क्रमशः काशी और तमिऴ्नाडु के बीच संबंध, ज्ञानात्मक एवं सांस्कृतिक संबंधों को सुदृढ़ करना, भारतीय ज्ञान-परंपरा में अगस्त्य मुनि का योगदान तथा 'तमिऴ् सीखें' रहे हैं। इसी क्रम में इस वर्ष 'तिरुक्कुरळ् का अध्ययन करें' विषय के अंतर्गत वाराणसी में 28 नवंबर 2026 से 12 दिसंबर 2026 तक काशी तमिऴ् संगमम् 5.0 का आयोजन किया जा रहा है।

काशी–तमिऴ्नाडु : ऐतिहासिक संबंधों की कड़ियाँ

गंगा के तट पर स्थित काशी तथा वैगै और कावेरी नदियों के तट पर स्थित तमिऴ्नाडु, ये दोनों भारत के अत्यंत प्राचीन ज्ञान-केंद्र हैं। इन दोनों को जोड़ने वाली कुछ ऐतिहासिक कड़ियाँ, जो सदियों से चली आ रही हैं, इस प्रकार हैं:

कुमरगुरुपरर् — 17वीं शताब्दी: धर्मपुरम् आधीनम् से संबंधित कुमरगुरुपरर् ने काशी में कुमारसामी मठ की स्थापना की तथा केदार घाट पर केदारेश्वर मंदिर का निर्माण कराया। उन्होंने *काशी कलम्बकम्* की रचना की और काशी में ही ईश्वर के चरणों में विलीन हुए।

महाकवि भारतीयर; महाकवि सुब्रमणिय भारती 1898 से 1902 तक काशी के हनुमान घाट पर रहे। जिस भवन में वे रहते थे, उसका पुनरुद्धार करके उसे 'भारती इल्लम्' नाम दिया गया और 11 दिसंबर 2022 को उसका उद्घाटन किया गया। उनकी प्रसिद्ध पंक्ति—

'*காசி நகர்ப் புலவர் பேசும் உரைதான் காஞ்சியில் கேட்பதற்கோர் கருவி செய்வோம்*'

'कासि नगर्प् पुलवर् पेसुम् उरैतान् काञ्चियिल् केट्पदर्कोर् करुवि चॆय्वोम्'

अर्थात्: "काशी नगर के विद्वान जो कहते हैं, उसे काञ्ची में सुनने का साधन बनाएँगे।" जो उत्तर और दक्षिण भारत को जोड़ने के उनके स्वप्न को अभिव्यक्त करती है।

तेनकाशी और शिवकाशी: 'दक्षिण की काशी' अर्थात् *तेनकाशी* नाम ही काशी के साथ उसके संबंध को व्यक्त करता है। इन मंदिरों का संबंध 15वीं शताब्दी के पांड्य राजा पराक्रम पांड्य से जोड़ा जाता है। तेनकाशी के पांड्य शासक अतिवीरराम पांड्य ने *काशी काण्डम्* की रचना की।

"जल सब गंगा, भूमि सब काशी": पांड्य परंपरा में प्रचलित "नीरेल्लाम् गंगै, निलमेल्लाम् काशी" अर्थात् "सारा जल गंगा है और सारी भूमि काशी है"—इस उक्ति का उल्लेख माननीय प्रधानमंत्री सुश्री नरेंद्र मोदी जी ने 2023 के काशी तमिऴ् संगमम् के उद्घाटन समारोह में किया था।

काशी–रामेश्वरम् यात्रा: यह प्राचीन विश्वास है कि काशी यात्रा रामेश्वरम् के दर्शन के साथ ही पूर्ण होती है। तमिऴ् विवाह-संस्कार में आज भी 'काशी यात्रा' नामक एक रस्म का प्रचलन है।

शिक्षा का सेतु: भारत के माननीय प्रधानमंत्री सुश्री नरेंद्र मोदी जी ने 11 सितंबर 2021 को महाकवि भारती की शताब्दी पुण्यतिथि के अवसर पर घोषणा की कि बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में 'सुब्रमणिय भारती तमिऴ् अध्ययन पीठ' की स्थापना की जाएगी।

काशी तमिऴ् संगमम् की यात्रा

काशी तमिऴ् संगमम् की यात्रा के विभिन्न चरण निम्नलिखित रूप से पेश किये जा रहे हैं:

काशी तमिऴ् संगमम् 1.0

'काशी और तमिऴनाडु के बीच संबंध' वाले केंद्रीय विषय के अंतर्गत काशी तमिऴ् संगमम् 1.0 का आयोजन उत्तर प्रदेश के वाराणसी स्थित बनारस हिंदू विश्वविद्यालय परिसर में 16 नवंबर 2022 से 15 दिसंबर 2022 तक किया गया।

काशी तमिऴ् संगमम् 2.0

'ज्ञानात्मक एवं सांस्कृतिक संबंधों को सुदृढ़ करना' वाले केंद्रीय विषय के अंतर्गत काशी तमिऴ् संगमम् 2.0 का आयोजन उत्तर प्रदेश के वाराणसी स्थित नमो घाट पर 17 दिसंबर 2023 से 30 दिसंबर 2023 तक किया गया।

काशी तमिऴ् संगमम् 3.0

‘भारतीय ज्ञान-परंपरा में अगस्त्य मुनि का योगदान’-इस केंद्रीय विषय के अंतर्गत काशी तमिऴ् संगमम् 3.0 का आयोजन उत्तर प्रदेश के वाराणसी स्थित नमो घाट पर 15 फरवरी 2025 से 24 फरवरी 2025 तक किया गया।

काशी तमिऴ् संगमम् 4.0

‘तमिल सीखें’ - इस केंद्रीय विषय के अंतर्गत काशी तमिऴ् संगमम् 4.0 का आयोजन उत्तर प्रदेश के वाराणसी स्थित नमो घाट पर 2 दिसंबर 2025 से 15 दिसंबर 2025 तक किया गया। काशी तमिऴ् संगमम् का समापन समारोह तमिलनाडु के रामेश्वरम् में 30 दिसंबर 2025 को आयोजित किया गया।

काशी तमिऴ् संगमम् 5.0

‘तिरुक्कुऱळ् का अध्ययन करें’ - इस केंद्रीय विषय के अंतर्गत काशी तमिऴ् संगमम् 5.0 का आयोजन उत्तर प्रदेश के वाराणसी स्थित नमो घाट पर 28 नवंबर 2026 से 12 दिसंबर 2026 तक किया जा रहा है। भारत भर के 1,000 महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों से एक-एक विद्यार्थी के रूप में कुल 1,000 विद्यार्थियों का चयन किया गया है। ये विद्यार्थी अपनी-अपनी मातृभाषा में तिरुक्कुरळ् का अध्ययन करेंगे और अपने-अपने महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में वापस जाकर इसका प्रचार-प्रसार करेंगे।

तिरुक्कुऱळ् में किसी एक धर्म, किसी एक राजा अथवा किसी एक देश के नाम का उल्लेख नहीं किया गया है। इसी कारण सभी लोग इसे अपनी-अपनी विरासत के रूप में स्वीकार करते हैं और गौरवपूर्वक अपनाते हैं। केंद्रीय शास्त्रीय तमिऴ् संस्थान ने इस ग्रंथ को 35 भाषाओं में अनूदित रूप में प्रकाशित किया है तथा संविधान की आठवीं अनुसूची में सूचीबद्ध 22 भाषाओं में अपने बहुभाषी ऍप के माध्यम से भी उपलब्ध कराया है। इस प्रकार भारत के उत्तरी कोने के कश्मीर से एक विद्यार्थी अमुक दिन में जिस कुऱळ् का अपनी भाषा में अध्ययन करेगा, ठीक उसी दिन दक्षिणी कोने के कन्याकुमारी से एक विद्यार्थी उसी कुरळ् का अपनी मातृभाषा में अध्ययन कर सकता है। यह भारत की भाषायी विविधता में निहित एकता तथा ज्ञान को साझा करने वाले सांस्कृतिक आधार को सशक्त रूप से अभिव्यक्त करता है।

अध्याय – 2

तिरुवळ्ळुवर् का जीवन-परिचय

तिरुवळ्ळुवर् के बारे में हमें एक बात तो निश्चित रूप से ज्ञात है। वह है—उनके द्वारा रचित 1,330 कुऱळ्। उनके जन्म, परिवार और व्यवसाय से संबंधित अधिकांश विवरण बाद की लोक-परंपराओं और कथाओं पर आधारित हैं। फिर भी, उनकी रचना स्वयं अपने रचयिता के व्यक्तित्व को अत्यंत स्पष्ट रूप से हमारे सामने प्रस्तुत करती है।

नाम और विशेष उपाधियाँ

'वळ्ळुवऩ्' नाम के साथ 'तिरु' सम्मानसूचक विशेषण जुड़ने पर 'तिरुवळ्ळुवर्' नाम बना। परंपरा ने उन्हें अनेक सम्मानसूचक नाम और उपाधियाँ प्रदान की हैं—नायऩार्, देवर्, दॆय्वप्पुलवर्, मुदर्पावलर्, नान्मुखनार्, मातानुपंगि, सॆन्नाप्पोदार्, पॆरुनावलर्, पोय्यिल् पुलवर् आदि। ये नाम तिरुवळ्ळुवर् के प्रति तमिऴ् समाज द्वारा व्यक्त किए गए गहरे सम्मान और श्रद्धा को दर्शाते हैं।

काल : विद्वानों के मत

तिरुक्कुऱळ् की रचना का काल ईसा-पूर्व 300 से लेकर ईस्वी 5वीं शताब्दी तक विभिन्न विद्वानों द्वारा अलग-अलग प्रकार से निर्धारित किया गया है। चेक विद्वान कामिल ज़्वेलेबिल ने इसका काल लगभग ई. 450–500 माना है। *एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका* में इसका काल छठी शताब्दी माना गया है, जबकि यह भी उल्लेख किया गया है कि कुछ विद्वान इसे ईसा-पूर्व पहली शताब्दी का मानते हैं।

तमिऴ् परंपरा तिरुवळ्ळुवर् का काल ईसा-पूर्व 31 मानती है। मऱैमलै अडिगळ् द्वारा प्रस्तावित इस काल-गणना को आधार बनाकर तमिऴ्नाडु सरकार ने 1971 में राजपत्र के माध्यम से 'तिरुवळ्ळुवर् वर्ष' की व्यवस्था घोषित की और 1972 से इसे व्यवहार में लागू किया गया।

तिरुवळ्ळुवर् वर्ष = सामान्य ईस्वी वर्ष + 31

अर्थात् तमिऴ् माह तै (पूस/पौष), वर्ष 2026 से तिरुवळ्ळुवर् वर्ष 2057 माना जाता है।

लोक-परंपराओं की कथाएँ

बाद के स्वतंत्र पद्यों तथा मौखिक परंपराओं में तिरुवळ्ळुवर् के संबंध में कुछ कथाएँ मिलती हैं। इन कथाओं के ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं; फिर भी, वे इस बात को दर्शाती हैं कि लोकमानस में तिरुवळ्ळूवर् किस रूप में प्रतिष्ठित हैं।

- यह व्यापक लोक-परंपरा है कि तिरुवळ्ळुवर् का जन्म चेन्नई के मैलापुर में हुआ था। वहाँ उनके नाम पर एक स्वतंत्र मंदिर भी है।
- लोक-परंपरा के अनुसार वे बुनाई का व्यवसाय करते थे और उनकी पत्नी का नाम वासुकी था। एक प्रसिद्ध कथा के अनुसार, जब एक दिन पति ने उन्हें पुकारा, उस समय वासुकी कुएँ से चरखे के सहारे पानी से

भरे बर्तन से जुड़ी रस्सी खींच रही थीं। पति की पुकार सुनते ही वे पानी खींचने वाली रस्सी को उसी अवस्था में छोड़कर उनके पास चली आईं। रस्सी से जुड़ा बर्तन जैसे के तैसे लटक रहा था। यह कथा दांपत्य जीवन में प्रेम और समर्पण के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत की जाती है। यह घटना, दूसरी दृष्टि से वासुकी की पातिव्रत्यता की महिमा को भी दर्शाती है।

- एक अन्य कथा के अनुसार, जब *तिरुक्कुऱळ्* को मदुरै तमिऴ् संगम् में प्रस्तुत किया गया, तब संगम की पट्टिका ने केवल तिरुक्कुऱळ् के लिए ही स्थान प्रदान किया।
- तिरुक्कुऱळ् की प्रशंसा में रचे गए पचपन वेण्पा पद्यों का संग्रह तिरुवळ्ळुवमालै कहलाता है। इसमें इडैक्काडर् ने तिरुक्कुऱळ् की संक्षिप्तता और व्यापकता की प्रशंसा करते हुए कहा -

- कडुगैत् तुळैत्तेऴ् कड़लैप् पुगट्टि

अर्थात्: “सरसों के दाने को छेदकर उसमें सात समुद्रों को भर दिया गया है।” औवैयार ने इसी भाव को और अधिक सूक्ष्म रूप में व्यक्त करते हुए कहा कि यह ऐसा कुरल है -

[illegible]

[illegible]

अर्थात्: “परमाणु को छेदकर उसमें सात समुद्रों को समाहित कर संक्षिप्त रूप में कुऱळ् प्रस्तुत किया गया है।”

रचना में उपलब्ध तिरुवळ्ळुवर्

तिरुवळ्ळुवर् नीति, राजनीति, अर्थव्यवस्था, युद्धनीति, चिकित्सा, प्रेम आदि जीवन के लगभग सभी क्षेत्रों के गहन ज्ञाता दिखाई देते हैं। वे मनुष्य का मूल्यांकन उसके जन्म के आधार पर नहीं, बल्कि उसके कर्म और आचरण के आधार पर करते हैं।

इसी कारण जैन, बौद्ध, शैव और वैष्णव सहित विभिन्न धार्मिक एवं दार्शनिक परंपराओं के अनुयायी तिरुवळ्ळुवर् को अपना मानकर सम्मानित करते हैं। यह बहुस्वीकृति ही उनकी सार्वभौमिकता का एक महत्वपूर्ण प्रमाण है। शास्त्रीय साहित्य के विद्वान उन्हें भारत की व्यापक नैतिक चिंतन-परंपरा की एक महत्वपूर्ण वाणी के रूप में देखते हैं।

स्मारक एवं स्मृति-चिह्न

तिरुवळ्ळुवर् दिवस

तिरुवळ्ळुवर् दिवस तमिऴ् माह तै (पूस/पौष) के दूसरे दिन मनाया जाता है। यह पोंगल पर्व के उत्सव-क्रम का एक महत्वपूर्ण अंग है।

वळ्ळुवर् कोट्टम्, चेन्नई

चेन्नई में वल्लुवर कोट्टम का उद्घाटन अप्रैल 1976 में भारत के उस समय के राष्ट्रपति श्री फखरुद्दीन अली अहमद ने किया था। इसका वास्तु-रूपांकन वाई. गणपति स्थपति ने किया था। यहाँ तिरुक्कुऱळ् के 1,330 कुऱळ् पत्थरों पर उत्कीर्ण किए गए हैं। 21 जून, 2025 को आम जनता के दर्शनार्थ पुनः खोल दिया गया।

तिरुवळ्ळुवर् की प्रतिमा, कन्याकुमारी

कन्याकुमारी में 133 फुट ऊँची तिरुवळ्ळुवर् की प्रतिमा स्थापित है। इसकी ऊँचाई तिरुक्कुऱळ् के 133 अध्यायों का प्रतीक है। इसमें 38 फुट ऊँचा आधार *अरत्तुप्पाल्* के 38 अध्यायों का प्रतीक है, जबकि 95 फुट ऊँची प्रतिमा *पोरुट्पाल्* और *इन्बत्तुप्पाल्* के कुल 95 अध्यायों का प्रतिनिधित्व करती है। इस प्रतिमा का उद्घाटन 1 जनवरी 2000 को किया गया था। वर्ष 2004 में आई विनाशकारी सुनामी के दौरान भी यह प्रतिमा दृढ़ व स्थिर खड़ी रही। प्रतिमा की रजत जयंती के अवसर पर 30 दिसंबर 2024 को विवेकानंद शिला को जोड़ने वाले 77 मीटर लंबे काँच के पुल का उद्घाटन किया गया। तिरुवळ्ळुवर् की इस प्रतिमा को 'ज्ञान की प्रतिमा' के रूप में भी संबोधित किया जाता है।

अध्याय - 3
तिरुक्कुऱळ् ग्रंथ की संरचना और और विशिष्टताएँ

तिरुक्कुऱळ् में कुल 1,330 कुऱळ् हैं। इन्हें दस-दस कुऱळों के समूह में 133 अध्यायों तथा अऱम्–पॊरुळ्–इऩ्बम् अर्थात् धर्म/नीति–अर्थ/सामाजिक जीवन–प्रेम/सुख नामक तीन प्रमुख खंडों में विभाजित किया गया है। सभी कुऱळ् केवल दो अडि (पंक्तियों) और सात सीरों (शब्द) में रचित *कुऱळ् वेण्पा* छंद में हैं।

मुप्पाल् संरचना

मुप्पाल — 133 अध्याय, 1,330 कुऱळ् (परिमेलऴगर् की टीका के आधार पर अध्यायों की संख्या)		
अऱत्तुप्पाल् (धर्म/नीति खंड)	**पॊरुट्पाल्** (अर्थ/सामाजिक-राजनीतिक खंड)	**कामत्तुप्पाल्** (प्रेम/काम खंड)
38 (1–38) अध्याय 380 कुऱळ्	70 (39–108) अध्याय 700 कुऱळ्	25 (109–133) अध्याय 250 कुऱळ्
• **पायिरवियल् — 4 अध्याय** • **इल्लऱवियल् — 20 अध्याय** • **तुऱवऱवियल् — 13 अध्याय** • **ऊऴियल् — 1 अध्याय**	• **अरसियल् — 25 अध्याय** • **अंगवियल् — 32 अध्याय** • **ऑऴिबियल् — 13 अध्याय**	• **कळवियल् — 7 अध्याय** • **कऱ् पियल् — 18 अध्याय**

अऱत्तुप्पाल् — 38 अध्याय

अऱत्तुप्पाल् व्यक्ति के आंतरिक जीवन तथा पारिवारिक जीवन का विवेचन करता है।

• पायिरवियल् (1–4)

इसमें ईश्वर-वंदना, वर्षा की महिमा, त्यागियों की महानता तथा धर्म के महत्त्व का प्रतिपादन किया गया है। ईश्वर-वंदना के तुरंत बाद वर्षा के लिए एक स्वतंत्र अध्याय निर्धारित करना इस बात को दर्शाता है कि वळ्ळुवर् के अनुसार प्राणी-जगत के जीवन का मूल आधार प्रकृति है।

इल्लऱवियल् (5–24)

इसमें गृहस्थ जीवन, जीवनसाथी का सद्‌गुण, संतान-प्राप्ति, प्रेम, अतिथि-सत्कार, मधुर वचन, किए गए उपकार को पहचानना, निष्पक्षता, सहनशीलता, पारस्परिक सहयोग की समझ, दान तथा यश आदि विषयों का विवेचन किया गया है।

वळ्ळुवर् गृहस्थ जीवन को संन्यासमय जीवन के समकक्ष मानते हैं और कुछ स्थानों पर उसे उससे भी श्रेष्ठ स्थान प्रदान करते हैं।

तुऱवऱवियल् (25–37)

इसमें करुणा, मांसाहार का त्याग, सत्यवादिता, क्रोध न करना, किसी को पीड़ा न पहुँचाना, अहिंसा, जीवन की अनित्यता, त्याग, सत्य का बोध तथा इच्छा का परित्याग जैसे विषयों का विवेचन मिलता है। विश्व के विद्वानों को विशेष रूप से आकर्षित करने वाले अहिंसा संबंधी कुऱळ् इसी खंड में हैं।

ऊऴियल् (38)

यह एकमात्र अध्याय मानवीय प्रयास से परे स्थित कर्मफल अथवा भाग्य के विषय में है।

पॊरुट्पाल् — 70 अध्याय

पॊरुट्पाल् तिरुक्कुऱळ् का आधे से अधिक भाग है। इसमें राजनीति, प्रशासन, अर्थव्यवस्था, मित्रता तथा सामाजिक जीवन जैसे विषयों का विस्तार से विवेचन किया गया है।

- **अरसियल् (39–63)**

इसमें राजा की महानता, शिक्षा, श्रवण/ज्ञानार्जन, बुद्धिमत्ता, न्यायपूर्ण शासन, गुप्तचर-व्यवस्था, शासन-क्षमता तथा विपत्तियों में विचलित न होना आदि विषयों का वर्णन है।

यहाँ शासक के व्यक्तिगत गुणों तथा न्यायपूर्ण शासन को विशेष महत्त्व दिया गया है।

- **अंगवियल् (64–95)**

इसमें मंत्रिता, वाक्पटुता, कार्य-दृढ़ता, दूत, देश, दुर्ग, धन-संपादन की विधि, सेना, मित्रता, शत्रुता तथा चिकित्सा आदि विषयों का विवेचन किया गया है।

यह भाग राज्य के विभिन्न अंगों एवं व्यवस्थाओं का क्रमबद्ध विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

- **ऒऴिबियल् (96–108)**

इसमें नागरिकता, मान-सम्मान, श्रेष्ठ चरित्र, सद्‌गुण, कृषि, निर्धनता, याचना तथा नीचता आदि विषयों पर चर्चा की गई है। इसमें मुख्यतः नागरिकों के गुणों और सामाजिक आचरण का विवेचन मिलता है।

कामत्तुप्पाल् — 25 अध्याय

कामत्तुप्पाल् संगम साहित्य की अकम् परंपरा पर आधारित प्रेम-काव्यात्मक आख्यान है। इसके कुऱळ्

मुख्यतः नायक, नायिका और सखी के कथनों के रूप में प्रस्तुत होते हैं।

तॊल्काप्पियम् के सिद्धांत "चुट्टि ऑरुवर् पेयर् कोळप् पॆऱार्" के अनुसार इसमें किसी व्यक्ति का वास्तविक नाम नहीं दिया गया है। इसलिए इसमें प्रस्तुत प्रेम सार्वभौमिक प्रेम का रूप धारण कर लेता है और सभी के लिए समान रूप से प्रासंगिक हो जाता है।

• कळवियल् (109–115)

नायिका के सौंदर्य एवं प्रेम की अनुभूति से लेकर प्रेम के सार्वजनिक रूप से प्रकट होने तक के विषयों का वर्णन इसमें मिलता है। यह विवाह-पूर्व प्रेम से संबंधित है।

• कऱ् पियल् (116–133)

इसमें वियोग-सहन न कर पाना, विरह, प्रतीक्षा, मान-मनुहार तथा पुनर्मिलन आदि का वर्णन है। यह मुख्यतः विवाहित दंपतियों के वियोग, आकांक्षा, प्रेम-रुष्टि और पुनर्मिलन से संबंधित है।

अऱम्, पॊरुळ् और इन्बम् का समन्वय

वळ्ळुवर् की दृष्टि में अऱम् के बिना पॊरुळ्, पॊरुळ् के बिना गृहस्थ जीवन और प्रेम के बिना इन्बम् आदि का पूर्ण अस्तित्व नहीं पाया जाता है। वळ्ळुवम् मानव जीवन के चार पुरुषार्थों—अऱम् (धर्म), पॊरुळ् (अर्थ), इऩ्बम् (काम/सुख) और वीडु (मोक्ष)—का उल्लेख करता है। वळ्ळुवर् ने पहले तीन पुरुषार्थों का विस्तारपूर्वक प्रतिपादन किया है और 'वीडु' अर्थात् मोक्ष को *तुऱवऱवियल्* तथा विशेष रूप से 'मॆय्युणर्तल्' (सत्य-बोध) अध्याय के अंतर्गत समाहित किया है। यही सार्वभौमिक जीवन-चौखटा भारत के किसी भी क्षेत्र के पाठक के लिए तिरुक्कुऱळ् को सहज और आत्मीय बनाता है।

कुऱळ् वेण्पा का छंद-विधान

- अडि (पंक्ति) : कुऱळ् में दो पंक्तियाँ होती हैं। पहली पंक्ति में चार सीर (शब्द) और अंतिम पंक्ति में तीन सीर (शब्द) होते हैं। इस प्रकार एक कुऱळ् में कुल सात सीर होते हैं।
- तळै : इसमें वॆण्डळै का प्रयोग होता है। अंतिम सीर नाळ्, मलर्, कासु अथवा पिऱप्पु—इन चार छंद-पद्धतिगत सूत्रों या रूपों में से किसी एक पर समाप्त होता है।
- सीर्-विभाजन **— कुऱळ् 1:** अकर | मुदल | एळुत्तॆल्लाम् | आदि भगवन् | मुदऱ् ऱे | उलगु।

अर्थात्, यह अत्यंत संक्षिप्त छंद-रचना अत्यल्प शब्दों में अत्यंत व्यापक विचार को अभिव्यक्त करने की क्षमता रखती है।

यही संक्षिप्तता तिरुक्कुऱळ् की शक्ति है। औवैयार् ने इसकी संक्षिप्तता की तुलना इस प्रकार की है मानो एक परमाणु को छेदकर उसमें सात समुद्रों को समाहित कर दिया गया हो। यही विशेषता इसे स्मरण करने, विभिन्न भाषाओं में अनुवाद करने तथा आज के सामाजिक माध्यमों पर साझा करने के लिए भी अत्यंत उपयुक्त बनाती है।

तिरुक्कुऱळ् की विशेष उपाधियाँ

मुप्पाल्, उत्तरवेद, देय्वनूल्, पोय्यामोऴि, वायुऱै वाऴ्त्तु तथा पोतुमऱै—ये तिरुक्कुऱळ् की प्रमुख विशेष उपाधियाँ हैं। इनमें ‘पोतुमऱै’ अर्थात् ‘सार्वजनिक/सर्वसामान्य वेद’ नाम उसके विषय-वस्तु की सार्वभौमिकता के कारण विशेष महत्त्व रखता है। फ्रांसीसी अनुवादक ए. एस. एरियल के कथनानुसार, वळ्ळुवर् जाति, समुदाय अथवा विश्वास के किसी भेद को महत्त्व दिए बिना समस्त मानवजाति से संवाद करते हैं। यही तिरुक्कुऱळ् की सार्वभौमिकता और उसकी कालातीत प्रासंगिकता का प्रमुख आधार है।

अध्याय - 4
टीकाकार और तिरुक्कुऱळ् के प्रकाशन का इतिहास

दसवीं शताब्दी से तेरहवीं शताब्दी तक तिरुक्कुऱळ् पर दर्मर्, मणक्कुडवर्, तामत्तर्, नच्चर्, परिदियार्, परिमेलऴगर्, तिरुमलैयर्, मल्लर्, परिप्पॆरुमाळ् और कालिङ्गर्-इन दस टीकाकारों ने टीकाएँ लिखी हैं। इनमें मनक्कुडवर्, परिदियार्, कालिंगर्, परिप्पॆरुमाळ् और परिमेलऴगर् की टीकाएँ पूर्ण रूप से उपलब्ध हैं, जबकि दर्मर्, तामत्तर् और नच्चर् की टीकाएँ आंशिक रूप में प्राप्त होती हैं। तिरुमलैयार् और मल्लर् की टीकाएँ वर्तमान में उपलब्ध नहीं हैं। तिरुक्कुऱळ् को अनेक शताब्दियों तक सुरक्षित रखते हुए वर्तमान पीढ़ी तक पहुँचाने में टीका-परंपरा का अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

आधुनिक काल की टीकाएँ

उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दियों में कविराज पंडितर्, उ. वे. सामीनाथ अय्यर्, क. वडिवेलु चेट्टियार्, अयोत्तिदासर्, व. उ. चिदंबरनार्, तिरु. वि. क., नामक्कल कविञर् और भारतीदासन आदि विद्वानों ने तिरुक्कुऱळ् पर टीकाएँ लिखी हैं। सरल एवं सुबोध व्याख्या की परंपरा का आरंभ 1949 में मु. वरदराजनार् की ‘तिरुक्कुऱळ् तॆळिवुरै’ से हुआ। आधुनिक काल में भी तिरुक्कुऱळ् पर निरंतर नई टीकाएँ लिखी जा रही हैं।

ताड़पत्र-पांडुलिपि से मुद्रित ग्रंथ तक

अनेक शताब्दियों तक तिरुक्कुऱळ् को ताड़पत्र-पांडुलिपियों (ओलैच्चुवडि) में प्रतिलिपि तैयार करके सुरक्षित रखा गया। 1812 में तंजावूर के ज्ञानप्रकाशर् ने नालडियार् और तिरुवळ्ळुवमालै के साथ तिरुक्कुऱळ् का प्रथम मुद्रित संस्करण प्रकाशित किया। उसके बाद से आज तक तिरुक्कुऱळ् के सैकड़ों संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं।

डिजिटल युग

आज तिरुक्कुऱळ् का संपूर्ण ग्रंथ बहुभाषी अनुप्रयोगों (ऐप्स), ऑडियो पुस्तकों आदि नए माध्यमों के रूप में इंटरनेट और स्मार्टफ़ोन पर भी उपलब्ध है। इस प्रकार, तिरुक्कुऱळ् की ज्ञान-परंपरा मुद्रित ग्रंथों से आगे बढ़कर आधुनिक डिजिटल माध्यमों तक पहुँच गई है।

अध्याय – 5
दिव्य वेद वळ्ळुववाद

यह खंड तिरुक्कुऱळ् के 108 अध्यायों के केंद्रीय विषयों का परिचय कराने के उद्देश्य से एक से तेईस शीर्षकों में व्यवस्थित किया गया है।

5. 1. तिरुक्कुऱळ् में प्रेम और सदाचार

विश्व-सामान्य नैतिक ग्रंथ के रूप में प्रतिष्ठित तिरुक्कुऱळ् मानव जीवन के मूलभूत मूल्यों को अत्यंत संक्षिप्त, गहन और प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करने वाला जीवन-दर्शन संबंधी साहित्य है। तिरुवळ्ळुवर् केवल यह नहीं बताते कि मनुष्य को किस प्रकार जीवन जीना चाहिए, बल्कि यह भी स्पष्ट करते हैं कि उसे किस प्रकार की मानसिक अवस्था और दृष्टिकोण के साथ जीवन जीना चाहिए। इस जीवन-दर्शन के केंद्र में प्रेम और सदाचार स्थित हैं। तिरुक्कुऱळ् में प्रेम को सदाचार का प्राण और सदाचार को प्रेम का व्यावहारिक रूप माना गया है।

प्रेम — मानव जीवन का आधार

तिरुवळ्ळुवर् प्रेम को केवल एक भावना के रूप में नहीं देखते; वे इसे मनुष्य को स्वार्थ से ऊपर उठाकर लोककल्याण की भावना तक पहुँचाने वाला मूलभूत गुण मानते हैं।

அன்பிலார் எல்லாம் தமக்குரியர் அன்புடையார்
என்பும் உரியர் பிறர்க்கு. (குறள் *72)*

अऩ्बिलार् ऎल्लाम् तमक्कुरियर् अऩ्बुडैयार्
ऎऩ्बुम् उरियर् पिऱर्क्कु। (कुऱळ् 72)
प्रेमहीनों का सब कुछ, निज का होता जान।
परहित हेतु प्रेमी जन, देते *हाड़ भी दान॥
*हाड़ – हड्डी

जिनके मन में दूसरों के प्रति प्रेम नहीं होता, वे सारी चीजें अपने लिए जमा कर रखते। पर जिनके मन में दूसरों के प्रति प्रेम होता है, वे दूसरों के कल्याण के लिए अपनी हड्डी भी दान कर देते।

अर्थात्, प्रेम से रहित व्यक्ति अपने जीवन को केवल अपने तक सीमित रखता है; जबकि प्रेमपूर्ण व्यक्ति अपने अस्तित्व को भी दूसरों के लिए समर्पित करने की मानसिक परिपक्वता प्राप्त करता है। इस प्रकार 'मैं' की संकुचित भावना को 'हम' की व्यापक भावना में परिवर्तित करना ही प्रेम है। परिवार में यह स्नेह के रूप में, समाज में करुणा के रूप में और समस्त विश्व के स्तर पर मानवतावाद के रूप में विस्तृत होता है।

அன்பின் வழியது உயிர்நிலை அஃதிலார்க்கு
என்புதோல் போர்த்த உடம்பு. (குறள் *80)*

अऩ्बिऩ् वऴियदु उयिर्निलै अह्दिलार्क्कु
ऎऩ्बुतोल् पोर्त्त उडम्बु. (कुऱळ् 80)
प्राणयुत देह वही जो, प्रेम पथ चले जान।

प्रेमहीन शरीर चर्म, लपेटी अस्थि मान॥

जिसका शरीर प्रेम मार्ग पर चले उसीका शरीर प्राणयुक्त है। जिसका शरीर प्रेम मार्ग पर नहीं चले उसका शरीर केवल चमड़ी से ढ़के अस्थि मात्र का है। वह शरीर निष्प्राण सा है।

केवल शरीर का जीवित रहना ही जीवन नहीं है; जब मनुष्य अन्य प्राणियों के सुख-दुःख को अनुभव करने में सक्षम होता है, तभी उसका जीवन सार्थक बनता है। इसलिए तिरुवळ्ळुवर् की दृष्टि में प्रेम केवल मनुष्य का एक गुण नहीं, बल्कि मानव जीवन की जीवनधारा है।

प्रेम और सदाचार

प्रेम और सदाचार के बीच अविभाज्य संबंध को यह कुऱळ् स्पष्ट करता है-

அன்பும் அறனும் உடைத்தாயின் இல்வாழ்க்கை
பண்பும் பயனும் அது. (குறள் *45)*

अऩ्बुम् अऱऩुम् उडैत्तायिऩ् इल्वाऴ्क्कै
पण्बुम् पयऩुम् अदु. (कुऱळ् 45)

प्रेम व धर्म मार्ग पर, जो जीवन आश्रित।
वह जीवन अति धन्य है, जो सुफल से पूरित॥

यदि गृहस्थ जीवन प्रेम और धर्म पर आधारित हो, तो उसे जीवन के वे ही गुण, लाभ और सुफल मिलते हैं, जो अन्य आश्रमों से मिलता है। उसे पूर्ण सुफल प्राप्त हो जाता है. (कुऱळ् उसे अन्य आश्रम का पालन आवश्यक नहीं होता।)

गृहस्थ जीवन की महानता धन या सत्ता में नहीं, बल्कि प्रेम और सदाचार से परिपूर्ण जीवन में निहित है। यहाँ प्रेम अंतःकरण के गुण के रूप में और सदाचार उसके व्यावहारिक रूप में प्रकट होता है।

प्रेमपूर्ण व्यक्ति दूसरों को हानि पहुँचाना नहीं चाहता। जो व्यक्ति दूसरों के दुःख को अपने दुःख के समान अनुभव करता है, उसके भीतर स्वाभाविक रूप से दानशीलता, अतिथि-सत्कार, किसी को दुःख न पहुँचाना, प्राणिहिंसा से बचना और करुणा जैसे सद्गुण विकसित होते हैं। अतः तिरुक्कुऱळ् में वर्णित सदाचार किसी बाहरी दबाव के कारण अपनाया जाने वाला आचरण नहीं है; वह प्रेम से स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होने वाली जीवन-पद्धति है।

इसी विचार को वळ्ळुवर् और अधिक गहराई से इस प्रकार व्यक्त करते हैं—

அறத்திற்கே அன்புசார் பென்ப அறியார்
மறத்திற்கும் அஃதே துணை. (குறள் *76)*

अऱत्तिऱ्के अऩ्बुसार्बु ऎऩ्ब अऱियार्
मऱत्तिऱ्कुम् अह्दे तुणै. (कुऱळ् 76)
*अज्ञ कहते हैं धर्म का, प्रेम देत है साथ।
अभिज्ञ कहते शौर्य का, भी वह देता साथ॥

* अज्ञ – अज्ञानी; अभिज्ञ – जानकार, मर्मज्ञ.

अज्ञानी लोग ही कहते हैं कि स्नेह धर्म का साथ देता है। जानकारों के अनुसार विचार करने से मालूम होगा कि वही स्नेह वीरता का भी साथ देता है।

प्रेम केवल कोमलता का प्रतीक ही नहीं है; बल्कि वह मनुष्य को अपने कर्तव्य का पालन करने, दूसरों के लिए त्याग करने तथा न्याय के पक्ष में साहसपूर्वक खड़े होने के लिए प्रेरित करने वाली आंतरिक शक्ति भी है।

सदाचार — मन की शुद्धता से आरंभ

तिरुवळ्ळुवर् की सदाचार संबंधी विचारधारा केवल बाहरी कर्मों पर आधारित नहीं है; वह मन और अंतःकरण से संबंधित है। सदाचार का प्रारंभ स्वयं मनुष्य के मन से होता है। इसलिए वळ्ळुवर् कहते हैं-

மனத்துக்கண் மாசிலன் ஆதல் அனைத்தறன்
ஆகுல நீர பிற. (*குறள் 34)*

मऩत्तुक्कण् मासिलऩ् आदल् अऩैत्तऱऩ्
आहुल नीर पिऱ. (कुऱळ् 34)

मन में मल रहित होना, मान वही है धर्म।
अन्य सारे कार्य तो, मान ढोंग के कर्म॥

आदमी के मन में निष्कलंक रहना ही धर्माचरण है। अपवित्र मन से कुछ भी करना केवल बाह्याडम्बरता का ही प्रदर्शन है।

अर्थात्, मन को कलुषरहित रखना ही समस्त सदाचार का आधार है; इसके अतिरिक्त अन्य सब कुछ बाहरी आडंबर मात्र हो सकता है।

कोई कार्य बाहरी दृष्टि से कितना ही अच्छा क्यों न दिखाई दे, यदि उसके पीछे छल, ईर्ष्या, लोभ या यश की आकांक्षा छिपी हो, तो उसके नैतिक मूल्य में कमी आ जाती है। इसलिए सदाचार केवल इस बात पर निर्भर नहीं करता कि मनुष्य क्या करता है, बल्कि इस पर भी निर्भर करता है कि वह उसे क्यों करता है।

सदाचार की श्रेष्ठता को तिरुवळ्ळुवर् इस प्रकार स्थापित करते हैं—

அறத்தினூஉங்கு ஆக்கமும் இல்லை அதனை
மறத்தலின் ஊங்கில்லை கேடு. (*குறள் 32)*

अऱत्तिऩूउङ्गु आक्कमुम् इल्लै अदऩै
मऱत्तलिऩ् ऊङ्गिल्लै केडु. (कुऱळ् 32)

सुधर्म से बढ़ दूसरा, श्रेय नहीं कुछ जान।
उसके विस्मरण से बढ़, निकृष्टता न मान॥

* निकृष्टता - तुच्छता.

धर्म से बढ़कर जीवन के लिए हितकर कोई नहीं है। उस धर्मानुष्ठान को भूलने से बढ़कर क्रूरता या

तुच्छता और कोई नहीं।

धन और सत्ता अस्थायी हैं; किंतु सदाचार से प्राप्त मानवीय प्रतिष्ठा स्थायी होती है। इसी कारण वळ्ळुवर् सदाचार को मानव जीवन की सर्वोच्च संपत्ति मानते हैं।

प्रेम से करुणा की ओर

तिरुक्कुऱळ् में प्रेम केवल परिवार और संबंधियों तक सीमित नहीं रहता। जब वह अन्य मनुष्यों से आगे बढ़कर समस्त प्राणियों को अपने आलिंगन में समेट लेता है, तब वह करुणा के उच्चतर स्तर को प्राप्त करता है।

அருட்செல்வம் செல்வத்துள் செல்வம் பொருட்செல்வம்
பூரியார் கண்ணும் உள. (*குறள் 241)*

अरुट्चेल्वम् सॆल्वत्तुळ् सॆल्वम् पॊरुट्चॆल्वम्

पूरियार् कण्णुम् उळ। (कुऱळ् 241)

सभी धनों में श्रेष्ठ है, दयारूप धन जान।

भौतिक धन तो नीच के, पास भी भरा जान॥

सब प्रकार की धन-संपदाएँ, तो नीच लोगों के पास भी हो सकती है। मगर धन-संपदाओं में सब से श्रेष्ठ होता है दया-भाव, जो श्रेष्ठ लोगों के पास मात्र होता है।

भौतिक संपत्ति की अपेक्षा अन्य प्राणियों के दुःख को अनुभव करने वाली करुणा-संपदा ही श्रेष्ठ है। इस दृष्टि से तिरुक्कुऱळ् में प्रेम का विस्तार इस क्रम में दिखाई देता है—

व्यक्तिगत प्रेम → पारिवारिक प्रेम → सामाजिक प्रेम → समस्त जीवों के प्रति प्रेम।

इसीलिए वळ्ळुवर् प्रश्न करते हैं—

தன்னுயிர்க்கு இன்னாமை தானறிவான் என்கொலோ
மன்னுயிர்க்கு இன்னா செயல். (*குறள் 318)*

तऩ्ऩुयिर्क्कु इऩ्ऩामै ताऩऱिवाऩ् ऎऩ्कॊलो
मऩ्ऩुयिर्क्कु इऩ्ऩा सॆयल्. (कुऱळ् 318)

जिसे, कोई जाने यह, अपने लिए अनिष्ट।

फिर अन्य जनों के प्रति, क्यों करे वह अनिष्ट॥

जिसने यह अनुभव किया कि यह अनिष्ट मेरे लिए दुखदायी हैं, तो वह अन्यों के प्रति किस कारण से वही अनिष्ट करे!

जो व्यक्ति स्वयं यह जानता है कि पीड़ा क्या होती है, वह उसी प्रकार की पीड़ा अन्य प्राणियों को कैसे पहुँचा सकता है? इस प्रश्न में सदाचार का गहरा आधार निहित है। स्वयं को दूसरे के स्थान पर रखकर देखने की संवेदनशीलता ही वास्तविक सदाचार का प्रारंभ है।

आज के विश्व के लिए संदेश

विज्ञान, प्रौद्योगिकी और अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में मानव समाज ने अत्यधिक प्रगति की है; फिर भी घृणा, हिंसा, स्वार्थ और भेदभाव जैसी समस्याएँ आज भी विद्यमान हैं। ऐसी स्थिति में तिरुक्कुऱळ् में प्रतिपादित प्रेम और सदाचार केवल प्राचीन विचार नहीं हैं, बल्कि आज के विश्व के लिए भी आवश्यक मानवीय जीवन-मूल्य हैं।

ज्ञान मनुष्य को शक्ति प्रदान करता है; उस शक्ति का सदुपयोग करने का मार्ग सदाचार दिखाता है। प्रौद्योगिकी मनुष्यों को एक-दूसरे से जोड़ती है; किंतु उनके हृदयों को जोड़ने का कार्य प्रेम करता है। कानून गलत कार्यों को रोकता है; जबकि सदाचार ऐसा मनुष्य तैयार करता है जो गलत कार्य करने से ही स्वयं को रोकता है।

तिरुक्कुऱळ् के अनुसार प्रेम और सदाचार दो अलग-अलग सिद्धांत नहीं हैं। प्रेम सदाचार की जड़ है और सदाचार प्रेम का फल। प्रेम मनुष्य को स्वार्थ से मुक्त करता है; सदाचार उसे लोककल्याण की दिशा में ले जाता है। जब प्रेम करुणा के रूप में विस्तृत होता है, तब मनुष्य सभी प्राणियों को अपने साथ जुड़ा हुआ अनुभव करने लगता है।

अतः तिरुवळ्ळुवर् द्वारा प्रतिपादित सदाचारपूर्ण जीवन भय के कारण पालन किया जाने वाला आचरण नहीं है; वह प्रेम से स्वाभाविक रूप से प्रस्फुटित होने वाली श्रेष्ठ जीवन-पद्धति है। प्रेम मनुष्य को मनुष्य बनाता है; सदाचार उसी मनुष्य को श्रेष्ठ मानव बनाता है। इन दोनों के मिलन से ही व्यक्तिगत शांति, पारिवारिक कल्याण, सामाजिक सद्भाव और वैश्विक मानवतावाद विकसित होते हैं।

5.2. तिरुक्कुऱळ् में अतिथि-सत्कार

तमिऴ् संस्कृति की श्रेष्ठ पहचान में से एक अतिथि-सत्कार है। व्यक्ति अपरिचित ही क्यों न हो, यदि वह घर की ओर अतिथि बनकर आया है, तो उसका प्रसन्न मुख से स्वागत करना, उसे भोजन कराना और स्नेहपूर्वक उसकी देखभाल करना तमिऴ् जीवन-परंपरा का एक महत्वपूर्ण अंग रहा है। तिरुवळ्ळुवर् इसे केवल एक सामाजिक प्रथा के रूप में नहीं देखते, बल्कि इसे गृहस्थ जीवन के मूलभूत सदाचार के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं। तिरुक्कुऱळ् में अतिथि-सत्कार के लिए एक स्वतंत्र अध्याय निर्धारित करके वे अतिथि की सेवा के महत्व को स्पष्ट करते हैं।

गृहस्थ जीवन का उद्देश्य — अतिथि-सत्कार

இருந்தோம்பி இல்வாழ்வ தெல்லாம் விருந்தோம்பி
வேளாண்மை செய்தற் பொருட்டு. (குறள் *81)*

इरुन्दोम्बि इल्वाऴवदु ऎल्लाम् विरुन्दोम्बि
वेळाण्मै सॆय्दऱ् पॊरुट्टु. (कुऱळ् 81)

धन रक्षण कर जो गृही, निबाहे घर का भार।
होता उसका धर्म है, करे पाहुन सत्कार॥
* पाहुन – अतिथि.

गृहस्थाश्रम में रहकर संपदा की रक्षा करते हुए, जो गृहस्थ जीवन चलाता है, उसका कर्तव्य ही अतिथि सत्कार करना है।

वळ्ळुवर् कहते हैं कि मनुष्य द्वारा धन अर्जित करने, उसकी रक्षा करने और गृहस्थ जीवन चलाने का उद्देश्य केवल स्वयं और अपने परिवार का पालन करना नहीं है; बल्कि दूसरों के लिए भी उपयोगी बनना है। यहाँ अतिथि-सत्कार केवल भोजन कराने तक सीमित नहीं रहता, बल्कि अपने पास उपलब्ध संसाधनों को दूसरों के साथ बाँटकर जीने के सामाजिक सदाचार का रूप धारण करता है।

जब अतिथि बाहर उपस्थित हो, तब अमृत के समान उत्तम भोजन होने पर भी उस अतिथि को छोड़कर अकेले भोजन करना उचित नहीं है—वळ्ळुवर् इस बात को निम्नलिखित कऱळ् के माध्यम से स्पष्ट करते हैं—

விருந்து புறத்ததாத் தானுண்டல் சாவா
மருந்தெனினும் வேண்டற்பாற் றன்று. (குறள் *82)*

विरुन्दु पुऱत्तदात् तान्ुण्डल् सावा
मरुन्देऩिऩुम् वेण्डऱ्पाऱ्ऱु अऩ्ऱु. (कुऱळ् 82)

अथिति बैठा है बाहर, बैठे भीतर आप।
अमृत ही क्यों न हो वह, भोग अकेला पाप।

अतिथि को घर के बाहर रखकर, संजीवनी अमृत ही क्यों न हो, घर के अन्दर बैठकर स्वयं सेवन करना पाप है।

इसका अंतर्निहित भाव यह है कि मनुष्य को जो कुछ प्राप्त हुआ है, उसे केवल अपने लिए सुरक्षित रखना ही संपत्ति का वास्तविक उद्देश्य नहीं है। संपत्ति की सार्थकता उसके उपभोग में नहीं, बल्कि उसके उचित साझाकरण में है।

भोजन से भी अधिक महत्वपूर्ण है प्रसन्नता भरा चेहरा

अतिथि-सत्कार में केवल भोजन ही महत्वपूर्ण नहीं है; उसे प्रदान करने वाले व्यक्ति की मानसिक अवस्था, आत्मीयता और प्रसन्न मुख भी उतने ही महत्वपूर्ण हैं।

மோப்பக் குழையும் அனிச்சம் முகந்திரிந்து
நோக்கக் குழையும் விருந்து. (குறள் *90)*

मोप्पक् कुऴैयुम् अनिच्चम् मुहम्तिरिन्दु
नोक्कक् कुऴैयुम् विरुंदु। (कुऱळ् 90)
सूंघा 'अनिच्च' कुसुम को, झट वह मुरझा जाय।
मुँह फेर ताकने से, सूख अतिथि-मुख जाय॥
जैसे 'अनिच्चम' पुष्प को सूंघते ही मुर्झा जाता है, वैसे ही प्रेमविहीन दृष्टि से देखने मात्र से अतिथि का मुँह उदास हो जाता है।

* 'अनिच्चम' तमिऴ्नाडु का एक पुष्प विशेष है, जो इतना कोमल है कि वह सूँघने मात्र से मुर्झा जाता है। इस पुष्प को हिंदी में जोंकमारी कहा जाता है।

वळ्ळुवर् कहते हैं कि जिस प्रकार सूँघने मात्र से अनिच्चम् पुष्प मुरझा जाता है, उसी प्रकार यदि अतिथि का स्वागत विमुख या अप्रसन्न मुख से किया जाए, तो उसका मन भी मुरझा जाता है।

इस प्रकार वे अत्यंत सूक्ष्मता से यह समझाते हैं कि अतिथि को दी जाने वाली वस्तु की मात्रा से अधिक महत्वपूर्ण यह भावना है कि "आप हमारे लिए स्वागतयोग्य और प्रिय हैं।" अतिथि के मन में यह आत्मीयता उत्पन्न करना ही वास्तविक अतिथि-सत्कार है।

सामाजिक संबंधों का आधार

अतिथि-सत्कार मनुष्यों के बीच की दूरी को कम करता है। यह अपरिचित व्यक्ति को संबंधी के समान निकट लाता है और व्यक्ति को समाज से जोड़ता है। इसलिए अतिथि-सत्कार को केवल व्यक्तिगत सद्गुण न मानकर सामाजिक एकता उत्पन्न करने वाले सांस्कृतिक गुण के रूप में भी देखा जा सकता है।

गृहस्थ जीवन के सर्वोच्च कर्तव्यों में अतिथि-सत्कार को स्थान दिया गया है। यह विचार इस कुऱळ् में व्यक्त होता है-

இருந்தோம்பி இல்வாழ்வ தெல்லாம் விருந்தோம்பி
வேளாண்மை செய்தற் பொருட்டு. (குறள் *81)*

इरुन्दोम्बि इल्वाऴ्वदु ऎल्लाम् विरुन्दोम्बि

वेळाण्मै सॆय्दऱ् पॊरुट्टु. (कुऱळ् 81)

धन रक्षण कर जो गृही, निबाहे घर का भार।
होता उसका धर्म है, करे पाहुन सत्कार॥
* पाहुन – अतिथि.

गृहस्थाश्रम में रहकर संपदा की रक्षा करते हुए, जो गृहस्थ जीवन चलाता है, उसका कर्तव्य ही अतिथि सत्कार करना है।

आज के नगरीकरण और व्यक्ति-केंद्रित जीवन में भी यह विचार अत्यंत प्रासंगिक है। आधुनिक युग में अतिथि-सत्कार का स्वरूप केवल भोजन कराने तक सीमित नहीं है; दूसरों का सम्मान करना, नए व्यक्ति को स्वीकार करना और सहायता की आवश्यकता वाले व्यक्ति का साथ देना भी इसके आधुनिक रूप हैं।

तिरुक्कुऱळ् में अतिथि-सत्कार केवल भोजन प्रदान करने की क्रिया नहीं है; यह हृदय को दूसरों के साथ बाँटने वाला सदाचार है। संपत्ति की महानता उसके स्वामित्व में नहीं, बल्कि उसके साझाकरण में है। घर की प्रतिष्ठा उसकी भौतिक सुविधाओं में नहीं, बल्कि वहाँ आने वाले व्यक्ति को मिलने वाले स्नेह और आत्मीयता में है।

अतः अतिथि-सत्कार के माध्यम से तिरुवळ्ळुवर् यह मानवीय विचार स्थापित करते हैं कि “केवल अपने लिए जीने की अपेक्षा दूसरों के लिए भी जीना ही श्रेष्ठ गृहस्थ जीवन है।”

5.3. तिरुक्कुऱळ् में जीव-प्रेम

तिरुक्कुऱळ् में ऐसी व्यापक नैतिक दृष्टि दिखाई देती है, जो केवल मनुष्य को केंद्र में न रखकर समस्त प्राणियों का सम्मान करते हुए जीवन जीने का संदेश देती है। करुणा, मांस-भक्षण का निषेध, अहिंसा और किसी को दुःख न पहुँचाने जैसे अध्यायों के माध्यम से वळ्ळुवर् सभी जीवों के जीवन के अधिकार पर बल देते हैं।

जीव को अपने प्राण के समान देखना

தன்னூன் பெருக்கற்குத் தான்பிறிது ஊனுண்பான்
எங்ஙனம் ஆளும் அருள். (குறள் *251)*

तन्नून् पॆरुक्कऱ्कुत् तान्पिऱिदु ऊऩुण्बान्

ऎङ्ङऩम् आळुम् अरुळ्. (कुऱळ् 251)

अपने मांस की वृद्धि, हेतु खाय पर-मांस।

कैसे करें उसके पास, दया भाव की आस॥

* आस - आशा, भरोसा.

अपने शरीर का आमिष बढ़ाने हेतु दूसरे प्राणियों का मांस खाने वाले के हृदय में दया का भाव कैसे हो सकता है?

* आमिष - मांस.

वळ्ळुवर् प्रश्न करते हैं कि जो व्यक्ति अपने शरीर को पुष्ट करने के लिए किसी दूसरे जीव की हत्या करके उसका मांस खाता है, वह भला किस प्रकार करुणाशील हो सकता है?

इस प्रश्न के माध्यम से वे केवल भोजन-पद्धति से संबंधित विचार प्रस्तुत नहीं करते, बल्कि एक मूलभूत नैतिक प्रश्न भी उठाते हैं—क्या हम अपने जीवन की तरह अन्य जीवों का भी सम्मान करते हैं?

அருளல்லது யாதெனில் கொல்லாமை கோறல்
பொருளல்லது அவ்வூன் தினல். (குறள் *254)*

अरुळल्लदु यादॆऩिन् कॊल्लामै कोऱल्

पॊरुळल्लदु अव्वून् तिऩल्. (कुऱळ् 254)

जीववध है निर्दयता, करुणा अहिंसा-धर्म।

मांसाहार करना तो, दयाविहीन कुकर्म॥

जीवहिंसा न करना दयालुता है। जीवों का वध करना और उनका मांस खाना निर्दयता है। अत: किसी भी रूप में जीवहिंसा नहीं करनी चाहिए।

वळ्ळुवर् अहिंसा को ही करुणा का आधार मानते हैं। अर्थात् किसी जीव की हत्या न करना ही करुणा की मूल अभिव्यक्ति है।

जीव-प्रेम की चरम अवस्था

जो व्यक्ति अन्य जीवों को किसी प्रकार की हानि पहुँचाए बिना जीवन जीता है, वही श्रेष्ठ मनुष्य है-यह विचार इस कुऱळ् में व्यक्त होता है-

கொல்லான் புலாலை மறுத்தானைக் கைகூப்பி
எல்லா உயிரும் தொழும். (குறள் *260)*

कॊल्लाऩ् पुलालै मऱुत्ताऩैक् कैकूप्पि
ऎल्ला उयिरुम् तॊऴुम्। (कुऱळ् 260)

जीव हिंसा जो न करे, और ना मांस-भक्षण।

सारा जग कर जोड़कर, करता उनका नमन॥

जो जीवहिंसा और मांसाहार नहीं करते ऐसे उदार हृदय व्यक्तियों को विश्व के सारे जीव हाथ जोड़कर जुहार करेंगे।

* जुहार - अभिवादन.

इसमें यह भाव व्यक्त होता है कि जो व्यक्ति प्राणियों की हत्या नहीं करता और मांस-भक्षण से विरत रहता है, उसके प्रति समस्त जीव भी आदर प्रकट करते हैं।

केवल अन्य जीवों के दुःख पर संवेदना व्यक्त करना पर्याप्त नहीं है। इस बात को यह कुऱळ् स्पष्ट करता है—

உண்ணாமை வேண்டும் புலாஅல் பிறிதுஒன்றன்
புண்அது உணர்வார்ப் பெறின். (குறள் *257)*

उण्णामै वेण्डुम् पुलाअल पिऱिदोऩ्ऱऩ्
पुण्अदु उणर्वार्प् पॆऱिऩ्. (कुऱळ् 257)

मांस जीव का घाव है, करके खूब विचार ।

मांस-भक्षक सदा जरूर, छोड़ें मांसाहार॥

मांसाहार करने वाले को यदि इस बात का ज्ञान हो जाए कि वह जो मांस खाता है वह किसी अन्य जीव के शरीर का घाव है, तो वह मांस भक्षण करना ही छोड़ देगा।

यदि मनुष्य यह अनुभव कर ले कि मांस वास्तव में किसी दूसरे जीव का घाव है, तो उसे मांस नहीं खाना चाहिए। इस प्रकार वळ्ळुवर् स्पष्ट करते हैं कि किसी अन्य जीव के दुःख को अपने मन से अनुभव करना ही वास्तविक जीव-प्रेम है।

इस अध्याय का गहरा संदेश यही है कि मनुष्य को ऐसी जीवन-पद्धति का चयन करना चाहिए,

जिससे किसी अन्य जीव को दुःख या हानि न पहुँचे।

आज के संदर्भ में इस विचार को पशु-संरक्षण, जैव-विविधता तथा पर्यावरण-संरक्षण जैसे विषयों से भी जोड़कर देखा जा सकता है। वळ्ळुवर् की जीव-प्रेम संबंधी दृष्टि इस समझ का मार्ग प्रशस्त करती है कि मनुष्य प्रकृति का स्वामी नहीं, बल्कि उसके जीवन-तंत्र की एक कड़ी है।

तिरुक्कुऱळ् में जीव-प्रेम, मनुष्य के प्रति प्रेम का ही व्यापक विस्तार है। जिस प्रकार मनुष्य अपने प्राणों को महत्व देता है, उसी प्रकार उसे अन्य प्राणियों के जीवन को भी महत्व देना चाहिए—यही कुऱळ् का नैतिक संदेश है।

मनुष्य की महानता उसकी शक्ति में नहीं है; बल्कि अपने से दुर्बल जीवों के प्रति उसके द्वारा प्रदर्शित करुणा में निहित है। इस दृष्टि से तिरुक्कुऱळ् समस्त प्राणियों को समाहित करने वाली व्यापक नैतिक विचारधारा प्रस्तुत करता है।

5.4. तिरुक्कुरळ् में संन्यास एवं त्यागमय जीवन

तिरुक्कुऱळ् के अऱत्तुप्पाल् में गृहस्थ जीवन के विवेचन के बाद संन्यास एवं त्याग से संबंधित नैतिक सिद्धांतों का निरूपण किया गया है। तिरुक्कुऱळ् में त्याग (तुऱवु) का अर्थ केवल शारीरिक रूप से संसार से दूर हो जाना नहीं है; इसके अनेक अध्याय यह गहन अर्थ भी प्रकट करते हैं कि कामना, आसक्ति, क्रोध और अहंकार जैसे मानसिक बंधनों पर विजय प्राप्त करना ही वास्तविक त्याग है। अऱत्तुप्पाल् को टीका-परंपरा में गृहस्थ-विषयक अध्याय (इल्लऱवियल्) और त्याग/संन्यास-विषयक अध्याय (तुऱवऱवियल्) के रूप में विभाजित किया गया है।

आसक्ति का त्याग

मनुष्य के अनेक दुःखों का कारण उसकी अत्यधिक आसक्ति होती है। धन, यश और सत्ता जीवन के साधन होने चाहिए; उन्हें मनुष्य को नियंत्रित करने वाली शक्तियों में परिवर्तित नहीं होना चाहिए। इन सबके ऊपर उठकर जीवन जीने के लिए ईश्वर की कृपा अत्यंत आवश्यक है। उस कृपा को प्राप्त करने के लिए अन्य आसक्तियों का त्याग करके ईश्वर के चरणों का आश्रय लेना चाहिए।

பற்றுக பற்றற்றான் பற்றினை அப்பற்றைப்
பற்றுக பற்று விடற்கு. (*குறள் 350)*

पऱ्ऱुह पऱ्ऱऱ्ऱान् पऱ्ऱिनै अप्पऱ्ऱैप्
पऱ्ऱुह पऱ्ऱु विडऱ्कु। (कुऱळ् 350)

अनासक्त की आसक्ति, में यदि हो आसक्ति।
वह अनुरक्ति देती है, सम्मोहनों से मुक्ति॥

भव सागर की सभी आसक्तियों और बंधनों से मुक्ति पाने के लिए नित्य-मुक्त व अनासक्त ईश्वर के प्रति दृढ़ आसक्ति होनी चाहिए। अन्य आसक्तियों को त्यागने के लिए ईश्वर के प्रति आसक्ति रखनी चाहिए।

वास्तविक त्याग वस्त्र या बाहरी रूप में नहीं, बल्कि अंतःकरण में निहित होता है। अपनी इच्छाओं पर नियंत्रण किए बिना केवल बाहरी रूप से संन्यासी दिखाई देने का कोई लाभ नहीं है। इसलिए तिरुवळ्ळुवर् का संन्यास आत्म-संयम का आंतरिक साधना-पथ है।

त्याग और करुणा

तिरुक्कुऱळ् की त्याग संबंधी विचारधारा मनुष्य को समाज से अलग नहीं करती। इसके विपरीत, करुणा, तप, सत्य, क्रोध न होना, किसी को दुःख न पहुँचाना और अहिंसा जैसे गुणों के माध्यम से उसे और अधिक उत्तरदायी बनाती है।

जिस व्यक्ति ने अपनी इच्छाओं पर विजय प्राप्त कर ली है, वह दूसरों के अधिकारों का हनन नहीं करेगा; जिसने क्रोध पर विजय प्राप्त कर ली है, वह दूसरों को पीड़ा नहीं पहुँचाएगा; और जिसने अहंकार को जीत लिया है, वह अन्य प्राणियों को अपने से निम्न नहीं समझेगा। इसलिए त्याग संसार से घृणा करना नहीं है; बल्कि अपने भीतर की असीम इच्छाओं पर विजय प्राप्त करना है।

आज के जीवन में, जहाँ उपभोग, प्रतिस्पर्धा और भौतिक लालसा निरंतर बढ़ रही है, तिरुक्कुऱळ् की त्याग संबंधी विचारधारा को एक नया अर्थ प्राप्त होता है। आवश्यकता और इच्छा के बीच का अंतर समझना, मर्यादित जीवन जीना, मन पर नियंत्रण रखना और सरलता अपनाना आधुनिक जीवन में भी अत्यंत आवश्यक हैं।

तिरुक्कुऱळ् में प्रतिपादित त्याग संसार से पलायन करना नहीं है; बल्कि संसार में रहते हुए अपने अंतर्मन पर विजय प्राप्त करना है। वस्तुओं का त्याग करने से अधिक महत्वपूर्ण है आसक्ति का त्याग करना और दूसरों पर विजय प्राप्त करने से अधिक श्रेष्ठ है स्वयं पर विजय प्राप्त करना। इस प्रकार तिरुवळ्ळुवर् त्याग को मनुष्य की अंतःशुद्धि और मानसिक मुक्ति की ओर ले जाने वाली जीवन-पद्धति के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

5.5. तिरुक्कुऱळ् में व्यक्तिगत आचरण

एक अच्छे समाज का आधार अच्छे मनुष्य ही होते हैं। केवल कानूनों के माध्यम से समाज को व्यवस्थित नहीं किया जा सकता; प्रत्येक व्यक्ति में आत्मसंयम, ईमानदारी, उत्तरदायित्व और विनम्रता जैसे गुण स्थापित होना आवश्यक है। तिरुक्कुऱळ् इसे व्यक्तिगत आचरण की व्यापक जीवन-दृष्टि के रूप में प्रस्तुत करता है।

आचरण ही श्रेष्ठता का आधार

मनुष्य को श्रेष्ठता प्रदान करने वाली वस्तु उसका धन या पद नहीं, बल्कि उसका सदाचारपूर्ण आचरण है। इसीलिए वळ्ळुवर् यह स्पष्ट करते हैं कि आचरण की रक्षा प्राणों से भी अधिक करनी चाहिए-

ஒழுக்கம் விழுப்பம் தரலான் ஒழுக்கம்
உயிரினும் ஓம்பப் படும். (குறள் *131)*

ऒऴुक्कम् विऴुप्पम् तरलान् ऒऴुक्कम्
उयिरिऩुम् ओम्बप् पडुम्। (कुऱळ् 131)

सदाचार औ’ संपदा, देता सुश्रेय जान।

अत: प्राणों से बढ़कर, रक्षणीय वह मान॥

सदाचार ही सबको संपन्न व महान बनाता है। इसलिए सदाचार प्राण से बढ़कर श्रेष्ठ होता है।

ज्ञान और प्रतिभा मनुष्य को प्रगति की ओर ले जा सकते हैं; किंतु उस प्रगति को मूल्यवान और सम्माननीय बनाने वाला तत्व आचरण है। यदि कोई व्यक्ति ज्ञानवान होते हुए भी अनैतिक आचरण वाला हो, तो उसका ज्ञान भी समाज के लिए हानिकारक बन सकता है।

आत्मसंयम — आचरण का प्रहरी

वळ्ळुवर् व्यक्तिगत आचरण के केंद्र में आत्मसंयम को रखते हैं। विचार, वाणी और कर्म को नियंत्रित करने की क्षमता ही संयम है। भावनाओं का तुरंत दास न बनकर उनके परिणामों पर विचार करके कार्य करना परिपक्व मन की पहचान है। यह विचार निम्नलिखित कुऱळ् में व्यक्त होता है—

அடக்கம் அமரருள் உய்க்கும் அடங்காமை
ஆரிருள் உய்த்து விடும். (குறள் *121)*

अडक्कम् अमररुळ् उय्क्कुम् अडङ्गामै
आरिरुळ् उय्त्तु विडुम्. (कुऱळ् 121)

संयम देता मनुज को, सुरलोक का निवास।

असंयम अंधेरे में, ले जा करता नास॥

नास =नाश

संयम व्यक्ति को अमरत्व प्रदान करता है और असंयम व्यक्ति को अंधकार रूपी नरक में पहूँचा देता है।

इसी प्रकार व्यक्ति की वाणी भी उसके आचरण का एक महत्वपूर्ण मापदंड है।

தீயினால் சுட்டபுண் உள்ளாறும் ஆறாதே
நாவினால் சுட்ட வடு. (குறள் *129)*

तीयिऩाल् सुट्टपुण् उळ्ळाऱुम् आऱादे
नाविऩाल् सुट्ट वडु। (कुऱळ् 129)

आग से जला घाव भी, सम्भव है भर जाय।
जला हुआ कटु वचन का, दाग नहीं मिट जाय॥

आग से उत्पन्न घाव, भले ही बाहर से दाग रहे, पर भीतर से वह ठीक हो जाएगा। उसका दुख भी मन से मिट जाएगा। मगर कटु वचन से उत्पन्न घाव कभी मन से दूर नहीं होता। सदा दुख देता है।

वळ्ळुवर् इस सत्य को स्पष्ट करते हैं कि आग से हुआ शारीरिक घाव समय के साथ भर सकता है, लेकिन कटु वाणी से उत्पन्न मानसिक घाव लंबे समय तक बना रह सकता है।

इसलिए व्यक्तिगत आचरण का अर्थ केवल कर्मों को नियंत्रित करना नहीं है; बल्कि विचार, वाणी और भावनाओं—इन सभी को परिष्कृत और संयमित करना है।

व्यक्ति से समाज तक

किसी व्यक्ति के सदाचारपूर्ण जीवन का लाभ केवल उसे ही प्राप्त नहीं होता। अच्छे परिवार ईमानदार और सदाचारी व्यक्तियों से बनते हैं; अच्छे परिवार मिलकर अच्छे समाज का निर्माण करते हैं; और अच्छा समाज ही उत्तरदायी राष्ट्र का निर्माण करता है। इसलिए सामाजिक परिवर्तन का आरंभ व्यक्ति से ही होता है।

आज के इंटरनेट और सोशल मीडिया के युग में व्यक्तिगत आचरण का क्षेत्र और भी व्यापक हो गया है। प्रत्यक्ष रूप से कहने में जिसे हम संकोच करते हैं, उसे इंटरनेट पर भी न लिखना, गलत या भ्रामक जानकारी को प्रसारित न करना और दूसरों की निजता का सम्मान करना—ये सभी आधुनिक व्यक्तिगत आचरण के रूप माने जा सकते हैं।

तिरुक्कुऱळ् में व्यक्तिगत आचरण किसी बाहरी नियंत्रण का नाम नहीं है; यह स्वयं को स्वयं अनुशासित करने वाला आंतरिक नियंत्रण है। संयम, मधुर वाणी, ईमानदारी, धैर्य और विनम्रता जैसे गुण ही मनुष्य के वास्तविक मूल्य को निर्धारित करते हैं। मनुष्य को संसार को बदलने से पहले स्वयं को सुधारना चाहिए—यही वळ्ळुवर् की मूल भावना है। चूँकि व्यक्तिगत आचरण ही सामाजिक आचरण का प्रथम बीज है, इसलिए तिरुक्कुऱळ् की यह जीवन-दृष्टि सर्वकालिक और सदैव प्रासंगिक बनी रहती है।

5.6. तिरुक्कुऱळ् में आत्मविश्वास संबंधी विचार

यद्यपि तिरुवळ्ळुवर् ने 'आत्मविश्वास' शब्द का प्रत्यक्ष रूप से प्रयोग नहीं किया है, तथापि उत्साह, मानसिक दृढ़ता, प्रयास, कार्य में दृढ़ता तथा विपत्तियों में विचलित न होना जैसे अध्यायों में आत्मविश्वास से संबंधित विचार स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। वळ्ळुवर् की दृष्टि में मनुष्य की उन्नति और अवनति काफी हद तक उसके मन की शक्ति और उसके प्रयास पर निर्भर करती है। इसलिए वे यह स्पष्ट करते हैं कि मनुष्य की महानता उसके अंतर्मन की ऊँचाई के अनुरूप होती है-

வெள்ளத் தனைய மலர்நீட்டம் மாந்தர்தம்
உள்ளத் தனையது உயர்வு. (குறள் *595)*

वॆळ्ळत् तऩैय मलर्नीट्टम् मान्दर्तम्
उळ्ळत् तऩैयदु उयर्वु। (कुऱळ् 595)

कमल नली की *लंबान, जल की थाह समान।
मानव का वर्चस्व भी, उसके जोश समान॥

*लंबान-लंबाई; थाह- गहराई; * वर्चस्व - महिमा, गरिमा.

जैसे जल में खिलने वाले कमल जैसे फूलों का डंटल जल की गहराई के अनुसार लंबा होता है, वैसे मनुष्य का महत्व उसके उत्साह के अनुसार बढ़ता जाता है।

जिस प्रकार जल की गहराई के अनुसार कमल का तना ऊपर उठता है (या कि जल स्तर के अनुसार कमल का स्तर भी बनता है), उसी प्रकार मनुष्य की उन्नति उसके अंतर्मन की ऊँचाई पर निर्भर करती है। यह कुऱळ् बताता है कि उच्च आदर्श और आत्मविश्वास ही मानव प्रगति का प्रारंभिक आधार हैं।

मानसिक दृढ़ता और सफलता

जीवन में अपनी मंजिल तक पहुँचने के लिए केवल लक्ष्य निर्धारित करना पर्याप्त नहीं है; उसे प्राप्त करने के लिए मानसिक दृढ़ता भी आवश्यक है। जहाँ विचार और कर्म एक-दूसरे से जुड़ते हैं, वहीं सफलता का निर्माण होता है। इसे स्पष्ट करते हुए वळ्ळुवर् कहते हैं-

எண்ணிய எண்ணியாங்கு எய்துப எண்ணியார்
திண்ணியர் ஆகப் பெறின். (குறள் *666)*

ऎण्णिय ऎण्णियाङ्गु ऎय्दुब ऎण्णियार्
तिण्णियर् आहप् पॆऱिऩ्। (कुऱळ् 666)
संकल्पित सब सिद्धियाँ, यथा किया संकल्प।
संकल्पक पायगा यदि, हो अटूट संकल्प॥
कार्य की योजना बनाने वाला व्यक्ति यदि कार्य करने में दक्ष हो और संकल्प में दृढ़ हो, तो वह अपने संकल्प के अनुरूप कार्य में जरूर सिद्धि पाएगा।

अर्थात्, यदि किसी कार्य की योजना बनाने वाले व्यक्ति दृढ़ संकल्प वाले हों, तो वे अपने विचार के अनुरूप

लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं।

वळ्ळुवर् असफलताओं के कारण मन को निराश न होने देने और निरंतर कार्य करते रहने पर भी बल देते हैं-

துன்பம் உறவரினும் செய்க துணிவாற்றி
இன்பம் பயக்கும் வினை. (குறள் *669)*

तुऩ्बम् उऱवरिऩुम् सॆय्ह तुणिवाऱ्ऱि
इऩ्बम् पयक्कुम् विऩै. (कुऱळ् 669)

यदि दुख आवे बीच जब, करे कार्य सुखांत।
कर उद्यम संकल्प से, जिसका शुभ फल अंत ।।

सुखांत कार्य करते समय बीच में, जो भी बाधाएँ आवें उनका सामना करते हुए दृढ़ता के साथ उस कार्य को सफलता पूर्वक पूरा करना चाहिए।

कार्य करते समय चाहे कितनी ही कठिनाइयाँ और बाधाएँ क्यों न आएँ, व्यक्ति को उस कार्य को छोड़ना नहीं चाहिए; बल्कि दृढ़ साहस के साथ निरंतर प्रयास करते हुए सफलता प्राप्त करनी चाहिए।

आत्मविश्वास का अर्थ केवल बाधाओं के बारे में न सोचना नहीं है; बल्कि बाधाएँ उपस्थित होने पर भी उन्हें पार कर सकने का विश्वास बनाए रखना है।

प्रयास का महत्व

यदि किसी कार्य में भाग्य के कारण सफलता प्राप्त न हो, तब भी उस कार्य के लिए किया गया प्रयास व्यर्थ नहीं जाता—यह विचार वळ्ळुवर् इस प्रकार व्यक्त करते हैं—

தெய்வத்தான் ஆகா தெனினும் முயற்சிதன்
மெய்வருத்தக் கூலி தரும். (குறள் *619)*

देय्वत्ताऩ् आहा दॆऩिऩुम् मुयऱ्चितऩ्
मॆय्वरुत्तक् कूलि तरुम्. (कुऱळ् 619)

विधि यदि अनुकूल ना हो, औ' कार्य हो विफल।
किये परिश्रम अनुकूल, उद्यम देता फल॥

भाग्य के अनुकूल न होने से किसी कार्य की विफलता हो जाए, तो भी शारीरिक श्रम जितना हुआ उसके अनुसार किया हुआ परिश्रम फल देता है।

अर्थात्, यदि कोई कार्य दैववश पूरा न हो सके, तब भी उसके लिए किया गया सच्चा और परिश्रमपूर्ण प्रयास अपना प्रतिफल अवश्य देता है।

इस कुऱळ् में यह विचार निहित है कि अपेक्षित पूर्ण सफलता प्राप्त न होने पर भी सच्चा प्रयास कभी व्यर्थ नहीं जाता। इस दृष्टि से आत्मविश्वास केवल सकारात्मक सोच का नाम नहीं है; वह प्रयास से जुड़ा हुआ कर्मप्रधान

आत्मविश्वास है।

तिरुक्कुऱळ् की दृष्टि में आत्मविश्वास अहंकार नहीं, बल्कि अपनी क्षमता को पहचानकर, लक्ष्य को स्पष्ट रूप से निर्धारित करके और निरंतर प्रयास के साथ कार्य करने वाली मानसिक दृढ़ता है। जब "मैं कर सकता हूँ" का विचार "मैं प्रयास करूँगा" के कर्म-संकल्प से जुड़ जाता है, तभी मनुष्य की क्षमता अपनी पूर्णता को प्राप्त करती है।

5.7. तिरुक्कुऱळ् में शिक्षा

तिरुवळ्ळुवर् शिक्षा को केवल ज्ञान-संग्रह के रूप में नहीं देखते। उनके अनुसार शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो मनुष्य की दृष्टि को व्यापक बनाए, उसके आचरण को परिष्कृत करे और जीवनभर उसका सहारा बनने वाली संपत्ति के रूप में स्थायी रहे।

கற்க கசடறக் கற்பவை கற்றபின்
நிற்க அதற்குத் தக. (குறள் **391)**

कऱ्क कसडऱक् कऱ्पवै कऱ्ऱपिऩ्
निऱ्क अदऱ्कुत् तह। (कुऱळ् 391)

सीख सीखने योग्य सब, भ्रम रहित हो सीख।
सीख-प्राप्ति के पश्चात्, कर आचरण सटीक॥

सीखने योग्य ग्रन्थों को बिना संशय के अच्छी तरह सीखना चाहिए। सीखने के उपरान्त जीवन में उन शिक्षाओं का पालन करना चाहिए।

अर्थात्, जो कुछ सीखना आवश्यक है, उसे त्रुटिरहित ढंग से सीखना चाहिए और सीखने के बाद उसी के अनुरूप जीवन का आचरण करना चाहिए। यही वळ्ळुवर् द्वारा प्रतिपादित शिक्षा का मूल सिद्धांत है। सीखना केवल सूचनाओं को स्मरण रखना नहीं है। विषय को स्पष्ट रूप से समझकर, अर्जित ज्ञान और उसके द्वारा बताए गए मार्ग के अनुसार जीवन जीना ही वास्तविक शिक्षा है।

नेत्र सम शिक्षा

शिक्षा आँखों के समान है। ऐसी शिक्षा प्राप्त करना ही मानव जीवन के प्रमुख उद्देश्यों में से एक है-यह बात वळ्ळुवम् हमें स्पष्ट रूप से समझाता है।

எண்ணென்ப ஏனை எழுத்தென்ப இவ்விரண்டும்
கண்ணென்ப வாழும் உயிர்க்கு. (குறள் **392)**

ऎण्णॆऩ्ब एऩै ऎऴुत्तॆऩ्ब इव्विरण्डुम्
कण्णॆऩ्ब वाऴुम् उयिर्क्कु. (कुऱळ् 392)

अंक विद्या व अक्षर विद्या, दुई कलाएँ जान।
ये कही जातीं जग की, *अँखिया के समान।।
*अँखिया- आँख

अंक-विद्या (गणित) और अक्षर विद्या (कला एवं साहित्य) आदि दोनों ऐसी कलाएँ, जो दुनिया में रहने वाले लोगों के दो आँखें कही जाती हैं।

संख्या-ज्ञान और अक्षर-ज्ञान-इन दोनों को जीवित मनुष्य की आँखों के समान माना गया है। आँखें हमें संसार के बाह्य स्वरूप को देखने में सहायता करती हैं; उसी प्रकार शिक्षा उसके वास्तविक अर्थ और स्वरूप को

समझने में सहायता करती है।

கண்ணுடையர் என்பவர் கற்றோர் முகத்திரண்டு
புண்ணுடையர் கல்லா தவர். (குறள் **393)**
कण्णुडैयर् ऎन्बवर् कऱ्ऱोर् मुहत्तिरण्डु
पुण्णुडैयर् कल्ला दवर्. (कुऱळ् 393)

नयन युक्त कहे जाते, जो हैं शिक्षित जान।

मुख पर दो घाव रखते, जो अनपढ़ हैं जान॥

शिक्षित जन ही नयनयुक्त होते हैं। अन्य अशिक्षित लोग चेहरे पर दो क्षत वाले होते हैं।

* क्षत - घाव.

वळ्ळुवर् कहते हैं कि वास्तव में आँखों वाले वही हैं जिन्होंने शिक्षा प्राप्त की है। अशिक्षित व्यक्ति के पास आँखें होते हुए भी उन्हें घाव के समान निष्प्रयोज्य माना गया है। इस प्रकार वळ्ळुवम् यह प्रतिपादित करता है कि शिक्षा मनुष्य को केवल देखने की दृष्टि ही नहीं देती, बल्कि विवेकपूर्ण ढंग से देखने और समझने की दृष्टि प्रदान करती है।

शिक्षा - अविनाशी संपत्ति

भौतिक संपत्ति नष्ट हो सकती है; किंतु शिक्षा मनुष्य के चिंतन और व्यक्तित्व में स्थायी रूप से बनी रहती है। इसलिए तिरुवळ्ळुवर् शिक्षा को अविनाशी संपत्ति मानते हैं। इस विचार को वे स्पष्ट करते हुए कहते हैं-

கேடில் விழுச்செல்வம் கல்வி ஒருவற்கு
மாடல்ல மற்றை யவை. (குறள் **400)**

केडिल् विऴुच्चॆल्वम् कल्वि ऒरुवऱ्कु
माडुअल्ल मऱ्ऱै यवै. (कुऱळ् 400)
विद्या धन मानव का, अमिट एवं श्रेष्ठ।
अन्य सारे धन नाहीं, धनों में अति श्रेष्ठ॥

संसार में मानव के लिए विद्या-धन ही अमिट व अक्षय धन होता है। विद्या-धन छोड़ शेष सारी संपदा श्रेष्ठ नहीं है।

तिरुक्कुऱळ् में शिक्षा ज्ञान, आचरण और व्यवहार-इन तीनों के समन्वय के रूप में प्रस्तुत होती है। शिक्षित व्यक्ति को केवल ज्ञानी ही नहीं होना चाहिए, बल्कि अपने अर्जित ज्ञान के अनुरूप जीवन जीने वाला भी होना चाहिए। ज्ञान को जीवन-व्यवहार में रूपांतरित करने में ही शिक्षा की पूर्णता निहित है।

5.8. तिरुक्कुऱळ् में नेतृत्व के गुण

तिरुक्कुऱळ् के पॊरुट्पाल् में राजा, मंत्री, दुर्ग, सेना, प्रजा, परामर्श, समय की पहचान, विचारपूर्वक कार्य करना आदि विषयों से संबंधित अनेक विचार प्रस्तुत किए गए हैं। इन विचारों को नेतृत्व के गुणों से संबंधित मूलभूत सिद्धांतों के रूप में भी देखा जा सकता है।

தூங்காமை கல்வி துணிவுடைமை இம்மூன்றும்
நீங்கா நிலனாள் பவற்கு. (குறள் **383)**

तूङ्गामै कल्वि तुणिवुडैमै इम्मून्ऱुम्
नीङ्गा निलऩाळ् बवऱ्कु. (कुऱळ् 383)

अविलंबना विद्या और, धैर्य हो इक साथ।
ये तीनों भूपाल को, छोड़ न जाये साथ॥

अविलंबन, विद्या और वीरता ये तीनों गुण पृथ्वी पर शासन करने वाले नरेश में अनवरत होने चाहिए। वळ्ळुवर् के अनुसार सजगता, ज्ञान और साहस-ये तीनों किसी नेता के मूलभूत गुण हैं।

नेतृत्व

जो नेता सभी के लिए सहज-सुलभ हो और सबके प्रति स्नेहभाव रखता हो, उसके नेतृत्व को समस्त जनता स्वीकार करती है। वळ्ळुवम् इस विचार को इस प्रकार प्रस्तुत करता है-

காட்சிக்கு எளியன் கடுஞ்சொல்லன் அல்லனேல்
மீக்கூறும் மன்னன் நிலம். (குறள் **386)**

काट्चिक्कु ऎळियऩ् कडुञ्सॊल्लऩ् अल्लऩेल्
मीक्कूऱुम् मऩ्ऩऩ् निलम्. (कुऱळ् 386)

जिसके दर्शन सरल हो, व नहीं वचन कठोर।
ऐसे नरेश देश का, होत यश-गान जोर॥

जिस राजा में सरल व्यवहार और कटु वचन हीन संस्कार हो, उसके देश का गुणगान सारा जगत करता है।

तिरुक्कुऱळ् नेता के आवश्यक गुणों के रूप में निर्भीकता, जरूरतमंदों की सहायता करने में उदारता, ज्ञान और उत्साह—इन चार गुणों को विशेष रूप से रेखांकित करता है।

नेतृत्व की नीति

முறைசெய்து காப்பாற்றும் மன்னவன் மக்கட்கு
இறையென்று வைக்கப் படும். (குறள் **388)**

मुऱैसॆय्दु काप्पाऱ्ऱुम् मऩ्ऩवऩ् मक्कट्कु
इऱैयॆऩ्ऱु वैक्कप् पडुम्। (कुऱळ् 388)

न्यायिक-शासन, जन-रक्षण, जो नृप करे जान।
उसका आन प्रजा करे, देवता के समान॥

* आन - आदर, सम्मान.

न्यायपूर्वक शासन करते हुए प्रजा की सुरक्षा करने वाला राजा मानवों में देवता माना जाता है और विशिष्ट आदर का पात्र बन जाता है।

तिरुक्कुरळ् द्वारा प्रतिपादित नेतृत्व-नीति यह है कि नेता को उन लोगों की आवश्यकताओं को पूरा करने और उनकी रक्षा करने में समर्थ होना चाहिए, जिन्होंने उस पर अपना विश्वास रखा है। इससे स्पष्ट होता है कि नेतृत्व अधिकार का विशेषाधिकार नहीं, बल्कि उत्तरदायित्व का दायित्व है।

एक श्रेष्ठ नेता को दूसरों के परामर्श को सुनने तथा उसकी कमियों की ओर संकेत करने वालों की बात को भी स्वीकार करने के लिए तत्पर रहना चाहिए।

तिरुक्कुरळ् की नेतृत्व-संबंधी चिंतनधारा में ज्ञान, साहस, न्याय, परामर्श, उत्तरदायित्व और लोककल्याण—ये सभी परस्पर जुड़े हुए हैं। वास्तविक नेता केवल आगे चलने वाला व्यक्ति नहीं होता, बल्कि वह ऐसा नेतृत्वकर्ता होता है जो सभी को आगे बढ़ने और उन्नति करने का अवसर प्रदान करता है।

5.9. तिरुक्कुऱळ् में शारीरिक स्वास्थ्य

तिरुक्कुऱळ् का 'मरुन्धु' (औषधि) अध्याय केवल रोग होने के बाद उपचार प्राप्त करने की बात नहीं करता, बल्कि रोग उत्पन्न ही न हो, ऐसी जीवन-पद्धति का भी विवेचन करता है। विशेष रूप से, तिरुवळ्ळुवर् ने आहार-संयम और भोजन संबंधी अनुशासन को जो महत्त्व दिया है, वह उल्लेखनीय है।

மருந்தென வேண்டாவாம் யாக்கைக்கு அருந்தியது
அற்றது போற்றி உணின். (குறள் **942)**

मरुन्दॆऩ वेण्डावाम् याक्कैक्कु अरुन्दियदु
अऱ्ऱदु पोऱ्ऱि उणिऩ्. (कुऱळ् 942)

खादित पाचन जान जो, उचित तौल में खाय।
तन को औषध की ग़रज, बिलकुल ना रह जाय॥

* खादित - खाया हुआ (भोजन); तौल - मात्रा; ग़रज आवश्यकता.

पहले खाया भोजन पच गया या नहीं यह जानकर उसके बाद उचित मात्रा में दूसरे जून का आहार ग्रहण करें तो शरीर के लिए औषधि की आवश्यकता नहीं होती।

इसमें निवारक स्वास्थ्य-चिंतन व्यक्त होता है। यदि पहले खाया हुआ भोजन पच जाने के बाद उचित मात्रा का ध्यान रखते हुए भोजन किया जाए, तो शरीर को औषधि की आवश्यकता न पड़ने की स्थिति उत्पन्न हो सकती है।

मिताहार — मात्रा का विवेक

அற்றால் அளவறிந்து உண்க அஃதுடம்பு
பெற்றான் நெடிதுய்க்கும் ஆறு. (குறள் **943)**

अऱ्ऱाल् अळवऱिन्दु उण्ग अह्दुउडम्बु
पॆऱ्ऱाऩ् नॆडितुय्क्कुम् आऱु. (कुऱळ् 943)

पाचन होने पर *गिज़ा, करो उचित परिमाण।
देहवान के चिरायु की, राह यही है जान॥

*गिज़ा- भोजन, खुराक; * देहवान - शरीर धारी; चिरायु - लंबी उम्र.

पहले खाया भोजन पच गया, तो उसके बाद उचित मात्रा में (अगले जून का) आहार ग्रहण करना चाहिए। शरीरधारी मानव के लिए अपने शरीर को चिरायु रखने का सही मार्ग यही है।

भोजन की गुणवत्ता जितनी महत्त्वपूर्ण है, उतनी ही उसकी मात्रा भी महत्त्वपूर्ण है। शरीर की आवश्यकता को समझकर उचित मात्रा में भोजन करना ही स्वस्थ जीवन का आधार है।

மாறுபாடு இல்லாத உண்டி மறுத்துண்ணின்
ஊறுபாடு இல்லை உயிர்க்கு. (குறள் **945)**

मा़ऱुबाडु इल्लाद उण्डि म़ऱुत्तुण्णिऩ्
ऊ़ऱुबाडु इल्लै उयिर्क्कु। (कु़ऱळ् 945)

*देहानुकूल जो करे, पथ्याहार का भोग।
प्राण-संकट के अनेक, दूर रहेंगे रोग॥

*देहानुकूल - शरीर के अनुकूल; * पथ्याहार - उपयुक्त आहार; प्राण-संकट - प्राण को संकट में डालने वाले

शरीर की प्रकृति के अनुकूल उपयुक्त भोजन, वह भी उचित मात्रा में यदि ग्रहण करें तो प्राणों को संकट में डालने वाली बीमारियाँ कभी उत्पन्न नहीं होंगी।

इसमें यह विचार भी प्रस्तुत किया गया है कि शरीर के अनुकूल न होने वाले भोजन से बचना चाहिए और अपने शरीर की प्रकृति के अनुरूप उपयुक्त आहार-पद्धति अपनानी चाहिए।

तिरुक्कुऱळ् की शारीरिक स्वास्थ्य संबंधी दृष्टि में रोग होने के बाद औषधि लेने की अपेक्षा, रोग से पूर्व अनुशासित जीवन-पद्धति को प्राथमिकता दी गई है। भोजन, उसकी मात्रा, पाचन-प्रक्रिया तथा शरीर की प्रकृति को समझकर जीवन जीना ही स्वस्थ जीवन का मूल आधार है।

5.10. तिरुक्कुऱळ् में चिकित्सा-नीति

तिरुक्कुऱळ् में 'मरुन्धु' (औषधि) नामक अध्याय में चिकित्सा तथा चिकित्सक से संबंधित महत्वपूर्ण विचार प्रस्तुत किए गए हैं। इसमें यह प्रतिपादित किया गया है कि चिकित्सक को रोग, रोग के कारण, रोग के निवारण के उपाय तथा रोगी की प्रकृति—इन सभी को समझकर उपचार करना चाहिए।

நோய்நாடி நோய்முதல் நாடி அதுதணிக்கும்
வாய்நாடி வாய்ப்பச் செயல். (குறள் **948)**

नोय्नाडि नोय्मुदल् नाडि अदुतणिक्कुम्
वाय्नाडि वाय्प्पच् चॆयल्।

पहले समझे रोग को, बाद समझे निदान।

निवृत्ति की युक्ति समझ, फिर कर यथा विधान॥

* निदान - रोग का कारण, रोग की पहचान; निवृत्ति - निवारण; विधान - प्रबंध, व्यवस्था.

पहले रोग की सही जाँच कर, फिर रोग के मूल कारण का पता लगाकर, उसके बाद उसे दूर करने का मार्ग समझकर अंत में उस रोग को दूर करने की व्यवस्था करनी चाहिए।

सबसे पहले रोग की पहचान करनी चाहिए; फिर उसके मूल कारण का पता लगाना चाहिए। इसके बाद रोग को दूर करने के उपाय पर विचार करके उपयुक्त उपचार करना चाहिए। यह कुऱळ् इस विचार को प्रस्तुत करता है कि रोग का निदान, उसके कारण का विश्लेषण और उपयुक्त उपचार—ये क्रमबद्ध चरण ही सुव्यवस्थित चिकित्सा-पद्धति का स्पष्ट स्वरूप हैं।

रोगी-केंद्रित चिकित्सा

உற்றான் அளவும் பிணியளவும் காலமும்
கற்றான் கருதிச் செயல். (குறள் **949)**

उऱ्ऱान् अळवुम् पिणियळवुम् कालमुम्
कऱ्ऱान् करुदिच् चॆयल्. (कुऱळ् 949)

रोगी की आयु, रोग का, काल एवं विस्तार।

सोच समझ वैद्य शुरू, करे सही उपचार॥

* उपचार - इलाज.

कुशल वैद्य को चाहिए कि वह पहले रोगी की आयु आदि स्थिति, रोग की प्रकृति और काल या ऋतु (चिकित्सा करने का समय) आदि बातों का खूब विचार करके फिर चिकित्सा आरम्भ करें।

एक ही रोग के लिए प्रत्येक व्यक्ति पर एक समान चिकित्सा-पद्धति लागू नहीं की जा सकती। चिकित्सक को रोगी की स्थिति, रोग की तीव्रता तथा रोग की अवधि आदि को ध्यान में रखकर उपचार करना चाहिए—यह बात इस कुऱळ् में स्पष्ट की गई है।

உற்றவன் தீர்ப்பான் மருந்துழைச் செல்வானென்று
அப்பால் நாற்கூற்றே மருந்து. (குறள் **950)**

उऱ्ऱवऩ् तीर्प्पाऩ् मरुन्दुऴैच् चॆल्वाऩॆऩ्ऱु
अप्पाल्नाऱ् कूऱ्ऱे मरुन्दु. (कुऱळ् 950)

रोगी वैद्य औषधि व, तीमारदार संग।
वैद्य शास्त्र के चार, प्रकार के सुअंग॥

* तीमारदार - रोगी का उपचार या सेवा सुश्रूषा करने वाला सहयोगी.

रोगी, वैद्य, औषध एवं तीमारदार (रोगी का उपचार या सेवा सुश्रूषा करने वाला) आदि ये चार लक्षण वैद्य शास्त्र के अंग हैं।

तिरुवळ्ळुवर् चिकित्सा-प्रक्रिया के विभिन्न घटकों जैसे रोगी, चिकित्सक, औषधि तथा चिकित्सा-सहायता आदि को एक समन्वित व्यवस्था के रूप में देखते हैं।

तिरुक्कुऱळ् में चिकित्सा-नीति का अर्थ केवल रोग का उपचार करना ही नहीं है; बल्कि रोगी को समझना, ज्ञान एवं विवेक के साथ रोग का परीक्षण करना और उत्तरदायित्वपूर्वक उपचार करना भी उसका अभिन्न अंग है। रोग पर ही नहीं, बल्कि रोगी को केंद्र में रखकर विचार करने वाली चिकित्सा-दृष्टि ही तिरुक्कुऱळ् की इस अवधारणा की प्रमुख विशेषता है।

5.11. तिरुक्कुऱळ् में मानसिक स्वास्थ्य से संबंधित जीवन-मूल्य

तिरुक्कुऱळ् में 'मानसिक स्वास्थ्य' नाम से कोई स्वतंत्र अध्याय प्रत्यक्ष रूप से नहीं मिलता। फिर भी चिंता, क्रोध, ईर्ष्या, लोभ, दुःख, मानसिक दृढ़ता, मित्रता, प्रेम और आत्मसंयम आदि विषयों से संबंधित कुऱळ् मानसिक शांति के लिए आवश्यक अनेक जीवन-मूल्यों को प्रस्तुत करते हैं।

அழுக்காறு அவாவெகுளி இன்னாச்சொல் நான்கும்
இழுக்கா இயன்றது அறம். (குறள் **35)**

अऴुक्कारु अवावॆहुळि इऩ्ऩाच्चॊल् नाऩ्गुम्
इऴुक्का इयऩ्ऱदु अऱम्।(कुऱळ् 35)

जलन लालच और कोप, कटुवच चारों दोष।
रहित रहना ही है तो, धर्मानुष्ठान निर्दोष॥

* कटुवच – कटु वचन.

ईर्ष्या, लोभ, क्रोध, कटुवचन आदि चारों दोषों से बचकर रहना ही धर्माचरण है।

ईर्ष्या, असीमित इच्छा, क्रोध तथा दूसरों को पीड़ा पहुँचाने वाली वाणी-इन चारों से दूर रहना सदाचार माना गया है। ये तत्व केवल व्यक्ति के पारस्परिक संबंधों को ही प्रभावित नहीं करते, बल्कि उसकी मानसिक शांति पर भी प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं।

दुःख का सामना करने की मानसिक शक्ति

दुःख के समय विचलित होना मानव का स्वाभाविक गुण है। यह मानसिक अशांति का कारण बन सकता है और ऐसी स्थिति में मानसिक स्वास्थ्य भी प्रभावित हो सकता है। ऐसे समय में व्यक्ति स्वयं को इस स्थिति से बचा सके, इसके लिए वळ्ळुवर् एक महत्वपूर्ण उपाय बताते हैं। उनका आशय है कि जब विपत्ति आए, तब यदि व्यक्ति उसका प्रसन्नचित्त होकर सामना करे, तो वह दुःख उसके मन को पूरी तरह प्रभावित नहीं कर पाएगा। इस विचार को निम्नलिखित कुऱळ् में प्रस्तुत किया गया है-

இடுக்கண் வருங்கால் நகுக அதனை
அடுத்தூர்வது அஃதொப்பது இல். (குறள் **621)**

इडुक्कण् वरुङ्गाल् नहुह अदऩै
अडुत्तूर्वदु अह्दोप्पदु इल्। (कुऱळ् 621)

संकट जब आ पड़े तब, होना अति प्रसन्न।
संकट पार करने का, *और मार्ग न भिन्न॥
*और- दूसरा * भिन्न - अन्य.

संकट आने पर चिंता तजकर प्रसन्न होना चाहिए। उस संकट से पार पाने के लिए इससे बढ़कर दूसरा कोई उत्तम मार्ग नहीं है।

इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिए कि दुःख या विपत्ति को नकार देना चाहिए। इसके बजाय, इसका आशय यह है कि व्यक्ति को विपरीत परिस्थितियों से पूरी तरह टूटे बिना उनका सामना करने की मानसिक दृढ़ता विकसित करनी चाहिए।

मानसिक स्वास्थ्य के लिए अच्छे मानवीय संबंध भी आवश्यक हैं। प्रेम, मित्रता, मधुर वाणी और कृतज्ञता जैसे गुणों को वळ्ळुवर् जो महत्त्व देते हैं, उनका संबंध व्यक्ति के आंतरिक जीवन के साथ-साथ उसके सामाजिक संबंधों से भी है।

मानसिक स्वास्थ्य बनाए रखने के उपाय

दूसरों की उन्नति देखकर ईर्ष्या करना मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करता है। इसके विपरीत, दूसरों की प्रगति देखकर ईर्ष्या करने के बजाय उसकी सराहना करना और प्रसन्न होना तथा स्वयं भी ऐसी उन्नति प्राप्त करने की इच्छा और क्षमता में विश्वास रखते हुए प्रयास करना मानसिक स्वास्थ्य को बनाए रखने में सहायक होता है। इस विचार को तिरुक्कुऱळ् इस प्रकार प्रस्तुत करता है-

அறனாக்கம் வேண்டாதான் என்பான் பிறனாக்கம்
பேணாது அழுக்கறுப் பான். (कुऱळ् 163)

अऱऩाक्कम् वेण्डादाऩ् ऎऩ्बाऩ् पिऱऩाक्कम्
पेणादु अऴुक्कऱुप् पाऩ्. (कुऱळ् 163)

जो परमार्थ लाभ की, रखता है नहिं चाह।
पर-वैभव से दुखी हो, मन में करता डाह॥
* डाह - ईर्ष्या.

अपने लिए, जो धर्म और अर्थ का फल नहीं चाहता वही दूसरों के धन और वैभव को देखकर दुखी होता है और मन में ईर्ष्या करता है।

तिरुक्कुऱळ् हमें यह संदेश देता है कि मानसिक शांति को बाहर खोजने से पहले अपने मन को परिष्कृत और अनुशासित करना आवश्यक है। अपनी भावनाओं को पहचानना, उन्हें उचित दिशा में नियंत्रित करना, दुःख और विपत्ति में विचलित न होना तथा प्रेमपूर्ण मानवीय संबंधों का विकास करना-ये सभी तिरुक्कुरल द्वारा प्रस्तुत महत्त्वपूर्ण जीवन-मूल्य हैं।

5. 12. तिरुक्कुऱळ् में मानवतावाद

मनुष्य को मनुष्य के रूप में सम्मान देना, दूसरों के दुःख को समझना, सहायता करना, किसी को हानि न पहुँचाना, भूख मिटाना और प्रेमपूर्वक व्यवहार करना-ये मानवतावाद के मूल आधार हैं। तिरुक्कुऱळ् में यह विचार विभिन्न रूपों में व्यापक रूप से अभिव्यक्त हुआ है।

அன்பிலார் எல்லாம் தமக்குரியர் அன்புடையார்
என்பும் உரியர் பிறர்க்கு. (குறள் **72)**

अऩ्बिलार् ऎल्लाम् तमक्कुरियर् अऩ्बुडैयार्
ऎऩ्बुम् उरियर् पिऱर्क्कु। (कुऱळ् 72)

प्रेमहीनों का सब कुछ, निज का होता जान।
परहित हेतु प्रेमी जन, देते *हाड़ भी दान॥

*हाड़ - हड्डी

जिनके मन में दूसरों के प्रति प्रेम नहीं होता, वे सारी चीजें अपने लिए जमा कर रखते। पर जिनके मन में दूसरों के प्रति प्रेम होता है, वे दूसरों के कल्याण के लिए अपनी हड्डी भी दान कर देते।

अपने स्वार्थ से ऊपर उठकर दूसरों की ओर उन्मुख होने वाला मन ही मानवतावाद का प्रारंभिक बिंदु है। प्रेम से रहित व्यक्ति सब कुछ अपने लिए मानता है, जबकि प्रेम से युक्त व्यक्ति अपने अस्तित्व और संसाधनों को भी दूसरों के साथ साझा करने के लिए तत्पर रहता है।

दूसरों के दुःख को अपने दुःख के समान अनुभव करना

அறிவினான் ஆகுவது உண்டோ பிறிதின்நோய்
தம்நோய்போல் போற்றாக் கடை. (குறள் **315)**

अऱिविऩाऩ् आहुवदु उण्डो पिऱिदिऩ्नोय्
तम्नोय्पोल् पोऱ्ऱाक् कडै. (कुऱळ् 315)

पर का त्राण जो न करे, पर-दुख अपना मान।
क्या काम आवे उसकी, सद्‌बुद्धि और ज्ञान।।

यदि कोई दूसरों की पीड़ा को अपनी पीड़ा समझकर उसकी रक्षा न करे, तो उसकी बुद्धि और ज्ञान से क्या फायदा?

यदि व्यक्ति दूसरों के दुःख को अपने दुःख के समान अनुभव नहीं करता, तो उसके ज्ञान का क्या लाभ?—यह प्रश्न मानवतावाद की महत्ता को उजागर करता है। ज्ञान की श्रेष्ठता केवल उसके विस्तार में नहीं, बल्कि उसके द्वारा दूसरों के जीवन में उपयोगी बनने की क्षमता में निहित है।

उदारता और मानवतावाद

वास्तव में सहायता उसी समय उदारता कहलाती है, जब वह ऐसे व्यक्ति को दी जाए जिसे उसकी वास्तविक आवश्यकता हो। तिरुक्कुऱळ् इसे इस प्रकार स्पष्ट करता है-

வறியார்க்கொன்று ஈவதே ஈகை மற்றெல்லாம்
குறியெதிர்ப்பை நீரது உடைத்து. (குறள் **221)**

वऱियार्क्कुऑन्ऱु ईवदे ईहैमऱ् ऱेल्लाम्
कुऱियॆदिर्प्पै नीर तुडैत्तु. (कुऱळ् 221)

दीन को दिया दान ही, मानो उत्तम दान।
प्रतिदान का जोहना, है अन्य सभी दान॥

* जोहना - प्रतीक्षा करना

दीन-दुखियों और पीडितों को, जो दान दिया जाता है, वही अत्युत्तम दान होता है। अन्य सारे दान प्रत्युपकार की प्रतीक्षा में किए जाने वाले होते हैं।

बिना किसी प्रत्याशा के की गई सहायता मानवतावाद का उच्चतम रूप है। जरूरतमंद की सहायता करना केवल भौतिक सहयोग नहीं, बल्कि दूसरे मनुष्य के दुःख और आवश्यकता को समझते हुए उसके प्रति संवेदनशीलता प्रकट करना भी है।

तिरुक्कुऱळ् में मानवतावाद 'मैं' से 'हम' की ओर बढ़ने वाली मानसिक यात्रा है। जब व्यक्ति दूसरों के दुःख को अनुभव करता है और उनके कल्याण के लिए कार्य करता है, तभी उसका ज्ञान और उसकी संपत्ति वास्तविक मानवीय मूल्य प्राप्त करते हैं।

5.13. तिरुक्कुरळ् में सामाजिक सद्भाव

कोई भी समाज केवल कानूनों के आधार पर स्थिर नहीं रह सकता। एक-दूसरे का सम्मान, प्रेम, न्याय, धैर्य, मधुर वाणी और परस्पर सहयोग एवं त्याग की भावना—ये गुण सामाजिक सद्भाव की आधारशिला हैं।

இனிய உளவாக இன்னாத கூறல்
கனியிருப்பக் காய்கவர்ந் தற்று. (குறள் **100)**

इऩिय उळवाह इऩ्ऩाद कूऱल्
कऩियिरुप्पक् काय्कवर्न् तऱ्ऱु। (कुऱळ् 100)

त्यागकर जो मधुर वचन, कहे कटु वचन जान।
छोड़कर फल पका हुआ, कच्चा ग्रहण समान॥

मधुर वचनों को तजकर कठोर वचनों का उपयोग करना पके हुए फलों को छोड़कर कच्चे फल खाने के समान है।

उपलब्ध होने पर भी मधुर वचन न बोलकर कठोर शब्दों का प्रयोग करना ऐसा है, जैसे पके हुए फल को छोड़कर कच्चे फल को चुनना। पारस्परिक संबंधों को बनाए रखने में वाणी की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। इसलिए यह कुऱळ् सामाजिक संबंधों में भाषा और वाणी के उत्तरदायित्व को रेखांकित करता है।

बुराई का उत्तर भलाई से

वळ्ळुवर् कहते हैं कि प्रतिशोध की भावना के चक्र को आगे बढ़ाने के बजाय, बुराई का उत्तर भलाई से देना ही श्रेष्ठ गुण है। यह सामाजिक सद्भाव के प्रति उनकी गहरी नैतिक दृष्टि को अभिव्यक्त करता है। इसी विचार को स्पष्ट करने वाला तिरुक्कुरळ् है-

இன்னா செய்தாரை ஒறுத்தல் அவர்நாண
நன்னயம் செய்து விடல். (குறள் **314)**

इऩ्ऩासॆय् दारै ऒऱुत्तल् अवर्नाण
नऩ्ऩयम् सॆय्दु विडल्। (कुऱळ् 314)

अहित किया तो हित करो, अहित व हित झट भूल ।
पानी-पानी हो जाय, यही उसे त्रिशूल॥

अहित करने वाले को यदि दण्ड देना चाहे, तो उसके अपकार को क्षमा करके उसका उपकार कर दे, जिस से वह बहुत लज्जित हो जाए। फिर उसका अपकार और तुम्हारा उपकार दोनों को उसी क्षण भूल जाना चाहिए।

अर्थात्, जिसने हमें दुःख पहुँचाया है, उसे दंडित करने का श्रेष्ठ मार्ग यह है कि उसके प्रति ऐसा सद्व्यवहार किया जाए जिससे उसे अपने किए पर लज्जा हो। इस प्रकार प्रतिशोध के स्थान पर सद्भाव और नैतिक श्रेष्ठता को महत्त्व दिया गया है।

निष्पक्षता और न्याय

सामाजिक सद्भाव के लिए न्याय का स्थान सर्वोपरि है। किसी एक पक्ष का समर्थन किए बिना सभी के साथ समान दृष्टि से व्यवहार करने वाली निष्पक्षता के अभाव में स्थायी एकता संभव नहीं है। इसलिए तिरुक्कुऱळ् में सामाजिक सद्भाव का अर्थ भिन्नताओं को समाप्त करना नहीं है; बल्कि भिन्नताओं के बीच भी मानवीय सद्गुणों और परस्पर सम्मान की रक्षा करनी है।

प्रेम, मधुर वाणी, धैर्य, न्याय और क्षमा-ये तिरुक्कुऱळ् द्वारा प्रतिपादित सामाजिक सद्भाव के प्रमुख स्तंभ हैं। एकता का अर्थ यह नहीं है कि सभी लोग एक जैसे हों; बल्कि इसका अर्थ है कि भिन्न विचारों और विशेषताओं वाले लोग भी परस्पर सम्मान के साथ मिल-जुलकर जीवन व्यतीत करें।

5.14. तिरुक्कुऱळ् में मित्रता

तिरुक्कुऱळ् में मित्रता को केवल मनोरंजन या समय बिताने वाले संबंध के रूप में नहीं देखा गया है। तिरुवळ्ळुवर् ने अच्छे मित्र का चयन, मित्रता की परख, सच्ची मित्रता का संरक्षण तथा दुष्ट या अनुचित मित्रता से दूरी-इन सभी आयामों का विस्तार से विवेचन किया है।

முகநக நட்பது நட்பன்று நெஞ்சத்து
அகநக நட்பது நட்பு. (குறள் **786)**

मुहनह नट्पदु नट्पऩ्ऱु नॆञ्जत्तु
अहनह नट्पदु नट्पु. (कुऱळ् 786)

हँसना व मुँह खिलना, महज़ मैत्री न जान।
सच्ची मैत्री वह जिससे, जी खिल जाए जान॥

* महज़ - मात्र.

हँसमुख होकर मिलना और स्नेह दिखाना मात्र मित्रता नहीं है, बल्कि हृदय में सौहार्द भाव रखना ही सच्ची मित्रता है।

केवल मुख पर मुस्कान रखना मित्रता नहीं है; बल्कि हृदय से उत्पन्न होने वाला सच्चा स्नेह ही वास्तविक मित्रता है।

गलती सुधारने वाला मित्र

मित्र केवल वह नहीं है जो सुख और प्रसन्नता के समय साथ रहे। जो व्यक्ति मित्र को गलत मार्ग से हटाए और विपत्ति के समय उसका साथ दे, वही सच्चा मित्र है—इस प्रकार वळ्ळुवर् मित्रता की वास्तविक कसौटी निर्धारित करते हैं।

அழிவினவை நீக்கி ஆறுய்த்து அழிவின்கண்
அல்லல் உழப்பதாம் நட்பு. (குறள் **787)**

अऴिविऩ् अवैनीक्कि आऱुउय्त्तु अऴिविऩ्कण्
अल्लल् उऴप्पदाम् नट्पु. (कुऱळ् 787)

पात से हटा मित्र को, लेकर चलें सुपाथ।
मैत्री वही होती जो, विपदा में दे साथ॥

* पात - पतन; सुपाथ - अच्छा मार्ग, उन्नत मार्ग.

पतन के मार्ग पर चलते हुए मित्र को अवनत होने से रोकना, उसे सुमार्ग पर चलने की प्रेरणा देना तथा दुख व आपत्ति के समय उसके साथ रहकर सहायता करना मित्रता का लक्षण है।

यह कुऱळ् मित्रता के दायित्व को स्पष्ट करता है। विपत्ति में पीड़ित मित्र को संकट से उबारने के कार्य को वळ्ळुवर् एक अत्यंत प्रभावशाली उपमा के माध्यम से समझाते हैं।

உடுக்கை இழந்தவன் கைபோல ஆங்கே
இடுக்கண் களைவதாம் நட்பு. (குறள் **788)**

उडुक्कै इऴन्दवऩ् कैपोल आङ्गे
इडुक्कण् कळैवदाम् नट्पु । (कुऱळ् 788)

ज्यों ही *कछौटा खिसके, थामे जैसे हाथ।
त्यों मित्र खतरे में हो, झट से देना साथ॥

*कछौटा- अधोवस्त्र
कमर का वस्त्र खुलने से जैसे हाथ स्वत: आगे बढ़कर वस्त्र को थाम लेता है वैसे ही मित्र पर संकट आने पर तुरन्त जाकर उसके साथ रहकर कष्ट दूर करना ही मित्रता है।

जिस प्रकार वस्त्र के खिसक जाने पर हाथ स्वतः उसे सँभालने के लिए आगे बढ़ जाता है, उसी प्रकार मित्र के संकट में उसके सहायता के लिए पुकारने की प्रतीक्षा किए बिना तत्काल सहायता करना ही सच्ची मित्रता है।

मित्रता का वास्तविक मूल्य केवल सुख और प्रसन्नता को साझा करने में नहीं, बल्कि मित्र की गलतियों को सुधारने, विपत्ति में उसका साथ देने और उसके प्रति सच्चा एवं विश्वसनीय बने रहने में निहित है।

5.15. तिरुक्कुऱळ् में राजनीति

तिरुक्कुऱळ् के पॊरुट्पाल् में राज्य, शासक, मंत्री, दुर्ग, सेना, प्रजा, न्याय, अर्थव्यवस्था, दूत आदि राजनीतिक विषयों का विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है। वळ्ळुवर् के राजनीतिक चिंतन में लोककल्याण और न्याय को सर्वोच्च प्राथमिकता प्राप्त है।

படைகுடி கூழ்அமைச்சு நட்பரண் ஆறும்
உடையான் அரசருள் ஏறு. (குறள் **381)**

तन्नुयिर्क्कु इन्नामै तान्नरिवान् ऎन्कॊलो
मन्नुयिर्क्कु इन्ना सॆयल्. (कुऱळ् 318)

जिसे, कोई जाने यह, अपने लिए अनिष्ट।

फिर अन्य जनों के प्रति, क्यों करे वह अनिष्ट॥

जिसने यह अनुभव किया कि यह अनिष्ट मेरे लिए दुखदायी हैं, तो वह अन्यों के प्रति किस कारण से वही अनिष्ट करे!

वळ्ळुवर् सेना, प्रजा, आर्थिक संसाधन, मंत्रिपरिषद्, सहयोगी तथा दुर्ग-इन छह तत्वों को राज्य के प्रमुख अंगों के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

सुशासन और न्याय

வானோக்கி வாழும் உலகெல்லாம் மன்னவன்
கோல்நோக்கி வாழும் குடி. (குறள் **542)**

वान्नोक्कि वाऴुम् उलहॆल्लाम् मन्नवन्
कोल्नोक्कि वाऴुम् कुडि। (कुऱळ् 542)

हैं वर्षा पर निर्भर ज्यों, जग के सारे जीव।

प्रजा सुशासन की त्यों, *ताक में हैं अतीव॥

*ताक में-प्रतीक्षा में

जैसे विश्व के सारे जीव वर्षा पर निर्भर होकर जीते हैं, वैसे ही सारी प्रजा राजा के सुशासन की तीव्र प्रतीक्षा में जीती हैं।

जिस प्रकार समस्त संसार वर्षा की ओर आशा से देखता है, उसी प्रकार प्रजा का जीवन शासक के न्यायपूर्ण शासन पर निर्भर करता है-यह विचार इस कुऱळ् में व्यक्त हुआ है। राजनीति किसी व्यक्ति की प्रतिष्ठा बढ़ाने का साधन नहीं, बल्कि जनता की सुरक्षा और कल्याण के प्रति उत्तरदायित्व है-यही तिरुक्कुऱळ् की मूल राजनीतिक दृष्टि है।

तिरुक्कुऱळ् के राजनीतिक सिद्धांत में अधिकार से अधिक न्याय, शासक से अधिक प्रजा का कल्याण और शक्ति से अधिक उत्तरदायित्व-बोध को महत्त्व दिया गया है।

5.16. तिरुक्कुऱळ् में प्रशासनिक दक्षता

प्रशासन केवल निर्णय लेने का नाम नहीं है; बल्कि उचित कार्य, उचित व्यक्ति के हाथ, उचित समय पर सौंपना, उसके परिणामों का मूल्यांकन करना और उसे प्रभावी ढंग से पूरा कराना ही प्रशासन है। तिरुक्कुऱ: के अनेक अध्यायों में प्रशासन से संबंधित ऐसे विचार पाए जाते हैं।

இதனை இதனால் இவன்முடிக்கும் என்றாய்ந்து
அதனை அவன்கண் விடல். (குறள் **517)**

इदऩै इदऩाल् इवऩ्मुडिक्कुम् ऎऩ्ऱाय्न्दु
अदऩै अवऩ्कण् विडल्। (कुऱळ् 517)

कौन सा काम किस रीत, कौन करे यह जान।
वह काम उसे सौंपना, चहिए यह तुम जान॥

* चहिए - चाहिए।

किस कार्य को, किस तरह, किन साधनों से करने में कौन सक्षम है इन सभी बातों का खूब विचार करके फिर उस कार्य को उस व्यक्ति के पास सौंपकर निश्चिंत रहना चाहिए।

किस व्यक्ति द्वारा कौन-सा कार्य किस प्रकार अधिक प्रभावी ढंग से पूरा किया जा सकता है, इसका विचार करके वह कार्य उसी व्यक्ति को सौंपा जाना चाहिए। यह प्रशासन के उस सिद्धांत से संबंधित है जिसे “उचित कार्य के लिए उचित व्यक्ति” कहा जाता है।

नियोजन और कार्यान्वयन

எண்ணித் துணிக கருமம் துணிந்தபின்
எண்ணுவம் என்பது இழுக்கு. (குறள் **467)**

ऍण्णित् तुणिह करुमम् तुणिन्दपिऩ्
ऍण्णुवम् ऍऩ्बदु इऴुक्कु। (कुऱळ् 467)

कार्य प्रवेश पूर्व, खूब कर लो चिंतन।
प्रवेश पश्चात करना, बेकार वह मंथन।।

* मंथन - सोचना.

किये जाने वाला कार्य और वह कार्य करने के तरीके आदि विषयों पर करने से पहले ही खूब चिंतन-मनन करके वह कार्य आरम्भ करना चाहिए। यह सोचना कि कार्य आरम्भ करने के बाद उस पर विचार कर लें, बहुत बड़ी भूल है।

कार्य आरंभ करने से पहले उसके संबंध में विचार-विमर्श और उचित परीक्षण आवश्यक है; किंतु एक बार निर्णय लेने के बाद अनावश्यक संकोच या हिचकिचाहट उचित नहीं है। इस प्रकार वळ्ळुवर् नियोजन और कार्यान्वयन के बीच संतुलन की आवश्यकता को स्पष्ट करते हैं।

संसाधनों, समय, कार्य-पद्धति तथा कठिन कार्य को सफलतापूर्वक पूरा करने की क्षमता का ज्ञान होना

अच्छे प्रशासन का प्रमुख गुण है। इसे निम्नलिखित कुऱळ् स्पष्ट करता है-

கருவியும் காலமும் செய்கையும் செய்யும்
அருவினையும் மாண்டது அமைச்சு. (குறள் **631)**

करुवियुम् कालमुम् सॆय्हैयुम् सॆय्युम्
अरुविऩैयुम् माण्डदु अमैच्चु। (कुऱळ् 631)

साधन, काल, *रीति जान, नियमित कार्यसिद्धि।
जो करे वह दक्ष सचिव, जिसकी ऐसी बुद्धि॥

*रीति-उपाय; दक्ष-योग्य

जो हर कार्य केलिए आवश्यक साधनों का पता लगाकर, अनुकूल समय का चयन कर, नियमानुसार कार्य आरम्भ कर उसे सफलतापूर्वक संपन्न करता है वही सुयोग्य मंत्री है।

तिरुक्कुऱळ् की प्रशासन संबंधी दृष्टि नियोजन, मानव-संसाधन का उचित चयन, समय की पहचान, उत्तरदायित्व का विभाजन और कार्यक्षमता—इन सभी के समन्वय पर आधारित है। श्रेष्ठ प्रशासक वह नहीं है जो प्रत्येक कार्य स्वयं करता है; बल्कि वह है जो उचित व्यक्तियों को सक्षम बनाकर कार्य को प्रभावी ढंग से संपन्न कराता है।

5.17. तिरुक्कुऱळ् में आर्थिक विचार

तिरुक्कुऱळ् सदाचारपूर्ण मार्ग से धन अर्जित करने, उसकी रक्षा करने, उसका उचित उपयोग करने तथा उसे दूसरों के लिए भी उपयोगी बनाने पर बल देता है। इस प्रकार तिरुक्कुऱळ् में अर्थव्यवस्था को मानव-कल्याण के साथ जोड़ा गया है।

இயற்றலும் ஈட்டலும் காத்தலும் காத்த
வகுத்தலும் வல்லது அரசு. (குறள் **385)**

इयऱ्ऱलुम् ईट्टलुम् कात्तलुम् कात्त
वहुत्तलुम् वल्लदु अरसु. (कुऱळ् 385)

अनेक स्रोत धनप्राप्ति, व संग्रह कर खूब।

रक्षण और वितरण में, उपयुक्त वही भूप॥

*उपयुक्त - समर्थ

आमदनी के सभी स्रोतों से धनार्जन करना, प्राप्त धन को जमा करते हुए उसकी रक्षा करना और उचित रूप से उसका व्यय करना आदि में जो सक्षम हो वही सुयोग्य राजा है।

आय के साधनों का सृजन करना, धन अर्जित करना, उसकी रक्षा करना तथा उसके बाद उसे उचित रूप से वितरित करना-ये सभी सुचारु आर्थिक प्रशासन के प्रमुख अंग हैं।

धन का सामाजिक उपयोग

जब कोई देश आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर और सुदृढ़ होता है, तो वह अपनी शक्ति के बल पर शत्रुता और निर्भरता को कम करने में सक्षम होता है। यह विचार वळ्ळुवम् प्रस्तुत करता है कि किसी देश में ऐसी आर्थिक प्रगति होनी चाहिए। निम्नलिखित तिरुक्कुऱळ् में भी यही विचार दृष्टिगोचर है-

செய்க பொருளைச் செறுநர் செருக்கறுக்கும்
எஃகதனிற் கூரியது இல். (குறள் **759)**

सॆय्ह पॊरुळैच् चॆऱुनर् सॆरुक्कऱुक्कुम्
ऎह्हुअदनिऱ् कूरियदु इल्। (कुऱळ् 759)

कर खूब धनार्जन जो, करे रिपु-गर्व दूर।

धन से बढ़ पैनी *कोय, तलवार नहीं क्रूर॥

*कोय-कोई

धन-संपत्ति का अर्जन खूब करना चाहिए। अपने शत्रु के अहंकार को नष्ट करने वाली तलवार उससे पैनी और कोई नहीं।

आर्थिक शक्ति व्यक्ति और राज्य-दोनों को प्रभावी ढंग से कार्य करने की क्षमता प्रदान करती है। किंतु तिरुक्कुऱळ् की व्यापक दृष्टि यह है कि धन सदाचार के नियंत्रण में रहना चाहिए। 'ईकै' (दान/उदारता),'ऑप्पुरवु' (सहयोग) और 'विरुन्दोम्बल्' (अतिथि-सत्कार) जैसे अध्याय संपत्ति के सामाजिक उत्तरदायित्व को भी रेखांकित करते हैं। इसलिए धन अर्जित करने का अंतिम उद्देश्य केवल उसका संचय करना ही नहीं, बल्कि उसे सार्थक और उपयोगी बनाना भी है।

तिरुक्कुऱळ् की आर्थिक विचारधारा में उत्पादन - अर्जन - संरक्षण - वितरण के सभी प्रमुख तत्व समाहित हैं। धन को मनुष्य पर शासन नहीं करना चाहिए; बल्कि उसका उपयोग मानव-कल्याण के लिए होना चाहिए। सदाचार से जुड़ी अर्थव्यवस्था ही स्थायी और सार्थक संपत्ति का आधार है-यही वळ्ळुवर् का मूल संदेश है।

5.18. तिरुक्कुऱळ् में कृषि

तिरुवळ्ळुवर् कृषि को केवल एक व्यवसाय के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक जीवन की आधारशिला के रूप में देखते हैं। खाद्य उत्पादन के बिना संसार की गतिविधियाँ सुचारु रूप से संचालित नहीं हो सकतीं। इसलिए तिरुवळ्ळुवर् ने कृषक को समाज में उच्च स्थान प्रदान किया है।

சுழன்றும் ஏர்ப்பின்னது உலகம் அதனால்
உழந்தும் உழவே தலை. (குறள் **1031)**

सुऴऩ्ऱुम्एर्प् पिऩ्ऩदु उलहम् अदऩाल्
उऴन्दुम् उऴवे तलै। (कुऱळ् 1031)

अन्यों में घूर्ण यह जग, खेती अधीन जान।
यद्यपि श्रमपूर्ण हो, खेती उत्तम मान।

* अन्यों में - अन्य कई धंधों में या धंधों के पीछे; घूर्ण - घूमता हुआ, पीछा चलता हुआ.

कई व्यवसायों के पीछे घूमे फिर भी यह संसार कृषि पर ही आश्रित रहता है। इसलिए बड़ा कठिन परिश्रम करना पड़े फिर भी कृषि ही अति उत्तम व्यवसाय है।

संसार अनेक प्रकार के व्यवसायों और कार्यों में संलग्न रहते हुए भी अंततः अपनी खाद्य आवश्यकताओं के लिए कृषि पर निर्भर रहता है। इसलिए सभी व्यवसायों में कृषि का स्थान सर्वोपरि है।

समाज की आधारशिला

कृषि संसार के समस्त जीवों की भूख की समस्या का समाधान करती है तथा उनके जीवन में संतोष और मानसिक स्पष्टता प्रदान करती है। भूख की पीड़ा को दूर करने वाले चिकित्सकों के समान मान्यता प्राप्त कृषकों का सम्मान करते हुए वळ्ळुवर् लिखते हैं-

உழுதுண்டு வாழ்வாரே வாழ்வார் மற்றெல்லாம்
தொழுதுண்டு பின்செல் பவர். (குறள் **1033)**

उऴुदुण्डु वाऴ्वारे वाऴ्वार्मऱ् ऱेल्लाम्
तॊऴुदुण्डु पिऩ्सॆल् बवर्. (कुऱळ् 1033)

हल चलाकर जो जीते, जीवन उनका धन्य।
उनके पीछे नमन कर, जाते हैं जो अन्य॥

कृषि के द्वारा अन्न पैदा कर उससे जो जीवन यापन करते हैं वे ही जीने के अधिकारी हैं। अन्य सभी लोग उनकी वंदना करके उनके पीछे जाने वाले होते हैं।

यह कुऱळ् अपने श्रम से अन्न का उत्पादन करने वाले कृषकों की आत्मनिर्भरता और सामाजिक योगदान को उच्च स्थान प्रदान करता है।

உழவினார் கைம்மடங்கின் இல்லை விழைவதூஉம்
விட்டேமென் பார்க்கும் நிலை. (குறள் **1036)**

उऴविनार् कैम्मडङ्गिऩ् इल्लै विऴैवदूउम्
विट्टेमॆऩ् बार्क्कुम् निलै. (कुऱळ् 1036)

कृषक हाथ यदि खिंचा, *सीर चलाना बंद।
निज को निस्पृह कहे जो, साधू जीवन बंद॥

* हाथ खिंचना - काम करने से पीछे रहना; *सीर – हल; निस्पृह – इच्छा और कामनाओं को जो त्याग कर चुके हों.

कृषक अपने हाथों से हल चलाना बंद कर दें तो 'सभी कामनाओं को त्यक्त कर दिया' कहने वाले संन्यासियों का जीना भी दूभर हो जाएगा।

वळ्ळुवर् इस सामाजिक-आर्थिक सत्य की ओर संकेत करते हैं कि यदि कृषकों के हाथ काम करना बंद कर दें, तो अन्य सभी क्षेत्र भी प्रभावित होंगे।

तिरुक्कुऱळ् में कृषि केवल खाद्य उत्पादन का साधन नहीं है; वह मानव समाज का जीवनाधार है। कृषक का सम्मान करना केवल एक व्यवसाय का सम्मान करना नहीं, बल्कि मानव जीवन को सहारा देने वाले मूलभूत श्रम का सम्मान करना है।

5.19. तिरुक्कुऱळ् में पर्यावरण

यद्यपि पर्यावरण के संबंध में विचार तिरुक्कुऱळ् में प्रत्यक्ष रूप से किसी स्वतंत्र विषय के रूप में प्रस्तुत नहीं किए गए हैं, तथापि वर्षा, जल, कृषि, जीव-प्रेम, अहिंसा तथा संयमित उपभोग जैसे विचारों के माध्यम से तिरुक्कुऱळ् प्रकृति और मानव-जीवन के पारस्परिक संबंध को स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त करता है।

जल का महत्त्व

यदि संसार में जीवन-चक्र का निरंतर संचालन होना है, तो जल-संसाधन अनिवार्य है। जल-संसाधन के महत्त्व को तिरुवळ्ळुवर् इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं-

நீரின்றி அமையாது உலகெனின் யார்யார்க்கும்
வானின்று அமையாது ஒழுக்கு. (குறள் **20)**

नीर् इऩ्ऱु अमैयादु उलहॆनिऩ् यार्यार्क्कुम्
वाऩ्इऩ्ऱु अमैयादु ऑऴुक्कु . (कुऱळ् 20)

बिना नीर संसार का, नहीं चले व्यापार।
बिना बारिश इस भू पर, ना रहे सदाचार॥

जिसतरह पानी के बिना किसी की जिंदगी नहीं चलेगी, उसी तरह वर्षा के बिना लोगों में चरित्र भी नहीं रह जाएगा।

अर्थात् जल के बिना संसार का जीवन संभव नहीं है। इसलिए वळ्ळुवर् जल के मूल स्रोत वर्षा के महत्त्व पर भी विशेष बल देते हैं।

விசும்பின் துளிவீழின் அல்லால்மற்று ஆங்கே
பசும்புல் தலைகாண்பு அரிது. (குறள் **16)**

विसुम्बिऩ् तुळिवीऴिऩ् अल्लाल्मऱ् ऱाङ्गे
पसुम्बुल् तलैकाण्बु अरिदु . (कुऱळ् 16)

आसमान से न होती, रिमझिम रिमझिम वृष्टि।
ना होती भू पर हरी, तृण की नोक भी दृष्टि॥
आसमान से वर्षा की बूंद यदि नहीं पड़े, तो धरती पर सामान्य तृण तक पाया नहीं जा सकता।

इस कुऱळ् में वे बताते हैं कि एक छोटे-से हरे तिनके के जीवन के लिए भी वर्षा आवश्यक है। मनुष्य, वनस्पति, जल और वर्षा अलग-अलग अस्तित्व नहीं हैं; वे एक-दूसरे से जुड़े हुए प्राकृतिक तंत्र के अंग हैं।

जीव-प्रेम और पर्यावरण

यदि किसी देश में जल-संपदा का अभाव हो जाए और उसकी समृद्धि घट जाए, तो वह निर्धनता की स्थिति में पहुँच जाता है। इसके परिणामस्वरूप रोग, भूख और वैमनस्य बढ़ते हैं तथा देश की सामाजिक व्यवस्था प्रभावित

होती है। अतः जल-संपदा इन समस्याओं को दूर करने का एक प्रमुख आधार है।

जब कोई देश प्राकृतिक संसाधनों से समृद्ध होता है, तब भूख का अभाव होता है। सभी को पर्याप्त भोजन उपलब्ध होने से मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य में सुधार होता है। साथ ही, जब सभी को आवश्यक संसाधन उपलब्ध होते हैं, तब आपसी वैमनस्य भी कम हो जाता है। ऐसी स्थिति में दान और तप जैसे सद्गुणों का पालन भी संभव होता है। इसलिए प्रकृति की रक्षा करना हमारा कर्तव्य है-इस तथ्य पर वळ्ळुवर् निम्नलिखित कुऱळ् के माध्यम से बल देते हैं-

தானம் தவமிரண்டும் தங்கா வியனுலகம்

வானம் வழங்காது எனின். (குறள் **19)**

दाऩम् तवमिरण्डुम् तंगा वियऩुलहम्

वाऩम् वऴङ्गादु ऎऩिऩ् . (कुऱळ् 19)

दान-पुण्य तप जगत पर, हो जाएगा बंद।

यदि विशाल इस विश्व में, जलद बरसना बंद ॥

यदि वृष्टि न हो, तो इस विशाल विश्व में परोपकार के लिए किए जाने वाला दान और अपने लिए किए जाने वाले तप-कर्म सब बंद हो जाएँगे ।

तिरुक्कुऱळ् में निहित पर्यावरण संबंधी विचार यह बोध कराते हैं कि मनुष्य प्रकृति से अलग होकर जीवन नहीं जी सकता। प्रकृति की रक्षा केवल बाहरी पर्यावरण की रक्षा करना नहीं है; बल्कि यह मानव-जीवन के मूल आधार की रक्षा करना है-यही वळ्ळुवर् का स्पष्ट संदेश है।

5.20. तिरुक्कुरळ् में पारिवारिक सदाचार

तिरुक्कुरळ् में परिवार को केवल व्यक्ति के निजी जीवन का स्थान नहीं माना गया है; बल्कि उसे सदाचार के निर्माण की प्रथम सामाजिक संस्था के रूप में देखा गया है। प्रेम, उत्तरदायित्व, अतिथि-सत्कार, संतान-प्राप्ति तथा मधुर पारिवारिक संबंध—ये सभी पारिवारिक सदाचार के प्रमुख घटक हैं।

அன்பும் அறனும் உடைத்தாயின் இல்வாழ்க்கை
பண்பும் பயனும் அது. (குறள் **45)**

अऩ्बुम् अऱऩुम् उडैत्तायिऩ् इल्वाऴ्क्कै
पण्बुम् पयऩुम् अदु. (कुऱळ् 45)

प्रेम व धर्म मार्ग पर, जो जीवन आश्रित।
वह जीवन अति धन्य है, जो सुफल से पूरित॥

परिवार की महानता केवल उसकी संपत्ति में नहीं, बल्कि प्रेम और सदाचार से परिपूर्ण पारिवारिक संबंधों में निहित है।

परिवार का सामाजिक उत्तरदायित्व

व्यक्तिगत जीवन का अर्थ केवल अपने और अपने परिवार तक सीमित होकर जीना नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति को उस संसार के प्रति, जिसने उसे जन्म दिया और उसका संरक्षण किया है, अपनी क्षमता के अनुसार कुछ न कुछ उत्तरदायित्व निभाना चाहिए। भले ही कोई व्यक्ति बड़े स्तर पर सामाजिक सेवा करने में सक्षम न हो, फिर भी अपने आसपास रहने वाले संबंधियों तथा अन्य जीवों की यथासंभव रक्षा करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है।

इसी विचार को ध्यान में रखते हुए तिरुवळ्ळुवर् गृहस्थ जीवन में गृहस्थ द्वारा किए जाने वाले कर्तव्यों को अत्यंत स्पष्ट रूप से निर्धारित करते हैं। संन्यासियों, निर्धनों तथा अपने संबंध वाले दिवंगत व्यक्तियों के प्रति सहायक और उत्तरदायी होना भी गृहस्थ जीवन के सदाचार का अंग है। पारिवारिक जीवन में अपनाए जाने वाले इस नैतिक आचरण को तिरुक्कुरळ् इस प्रकार स्पष्ट करता है-

இல்வாழ்வான் என்பான் இயல்புடைய மூவர்க்கும்
நல்லாற்றின் நின்ற துணை. (குறள் **41)**

इल्वाऴ्वाऩ् ऐऩ्बाऩ् इयल्बुडैय मूवर्क्कुम्
नल्लाऱ्ऱिऩ् निऩ्ऱ तुणै. (कुऱळ् 41)

धर्मानुयायी तीन का, जो दे स्थिराश्रय।
सुमार्ग के सहयोगी, वही गृहस्थ श्रेय॥

जो स्वभावत: अपने माता-पिता, सहधर्मिणी और संतान आदि तीनों के प्रति अपना नैतिक कर्तव्य निभाता है, वही सच्चा गृहस्थ कहलाता है।

अर्थात् गृहस्थ जीवन केवल अपने लिए जीने की व्यवस्था नहीं है; उसमें दूसरों के लिए सहारा बनने का

सामाजिक उत्तरदायित्व भी निहित है।

इस प्रकार के सामाजिक उत्तरदायित्व का आधार एक सुदृढ़ और सदाचारी परिवार-व्यवस्था है। इसलिए वळ्ळुवर् यह स्पष्ट करते हैं कि परिवार की उन्नति के लिए सद्‌गुणों से संपन्न पत्नी तथा परिवार की प्रगति को अगली पीढ़ी तक आगे ले जाने वाली सद्‌गुणी संतान आवश्यक है। वे कहते हैं-

மங்கலம் என்ப மனைமாட்சி மற்றதன்
நன்கலம் நன்மக்கட் பேறு. (குறள் **60)**

मङ्गलम् ऍन्ब मनैमाट्चि मऱ्ऱदन्
नन्गलम् नन्मक्कट् पेरु। (कुऱळ् 60)

गृह का जयमंगल है, स्त्री जो गुणी महान।।
स्त्री का सद्‌भूषण होता, है उत्तम संतान॥

पत्नी का सद्‌गुणी होना ही गृहस्थी में मंगल होता है। सुपुत्रों को जन्म देना ही उसका सुअलंकरण होता है।

परिवार की वास्तविक विशेषता उसके सद्‌गुणपूर्ण पारिवारिक संस्कारों तथा अगली पीढ़ी को सन्मार्ग पर विकसित करने में निहित है।

तिरुक्कुऱळ् में प्रतिपादित पारिवारिक सदाचार, प्रेम, उत्तरदायित्व, साझेदारी तथा सद्‌गुण आदि अगली पीढ़ी को निर्माण करने में समन्वय का काम करते हैं। यदि एक अच्छे समाज का निर्माण करना है, तो उसकी प्रथम पाठशाला-परिवार-का आधार सदाचार पर स्थापित होना चाहिए।

5.21. तिरुक्कुऱळ् में नारी

तिरुक्कुऱळ् में नारी के संबंध में व्यक्त विचारों को उसके काल की सामाजिक पृष्ठभूमि के संदर्भ में पढ़ना आवश्यक है। गृहस्थ जीवन, जीवनसंगिनी, संतान-प्राप्ति तथा कामत्तुप्पाल् जैसे भागों में नारी की स्थिति और भूमिका विभिन्न दृष्टिकोणों से अभिव्यक्त हुई है। इनमें जीवनसंगिनी के गुण, परिवार का संचालन तथा पारिवारिक संबंधों की गहराई जैसे पक्ष विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हैं।

गृहस्थ जीवन में नारी

जीवनसंगिनी को परिवार की समृद्धि और परिस्थितियों के अनुरूप परिवार को सुव्यवस्थित ढंग से संचालित करने वाली गरिमामयी स्त्री के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

மனைத்தக்க மாண்புடையள் ஆகித்தற் கொண்டான்
வளத்தக்காள் வாழ்க்கைத் துணை. (குறள் **51)**

मऩैत्तक्क माण्बुडैयळ् आहित्तऱ् कॊण्डाऩ्
वळत्तक्काळ् वाऴ्क्कैत् तुणै. (कुऱळ् 51)

गृहिणी सुगुणवती जो, कांत आय-अनुसार।
गृहस्थी चलावे वही, सहधर्मिणी सुचार॥

* कांत - पति; गृहिणि - गृहिणी; सहधर्मिणि - पत्नी; सुचार- सदाचार.

गृहस्थी के अनुकूल सद्गुणी बनकर अपने पति की आमदनी के अनुसार परिवार चलाने वाली पत्नी ही सही अर्थ में सहधर्मिणी कहलाती है।

इस कुऱळ् के माध्यम से वळ्ळुवर् पारिवारिक व्यवस्था में जीवनसंगिनी के उत्तरदायित्व और महत्त्व को स्पष्ट करते हैं। इसके अतिरिक्त, यदि परिवार को एक आदर्श गृहिणी प्राप्त न हो, तो वह गृहस्थी समृद्ध नहीं हो सकती-इस तथ्य को वे इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं-

மனைமாட்சி இல்லாள்கண் இல்லாயின் வாழ்க்கை
எனைமாட்சித் தாயினும் இல். (குறள் **52)**

मऩैमाट्चि इल्लाळ्कण् इल्लायिऩ् वाऴ्क्कै
ऎऩैमाट्चित् तायिऩुम् इल्. (कुऱळ् 52)

गार्हस्थ्य में गृहिणी, यदि ना गुण संपन्न।
व्यर्थ गृही का जीवन, यदि हो बहुसंपन्न॥

गृहस्थ जीवन के योग्य सद्गुण पत्नी में न होने पर, अनेक प्रकार की श्रेष्ठताएँ पाने पर भी उस पति का जीवन व्यर्थ है।

अर्थात् बाहरी संसाधन और समृद्धि कितनी ही अधिक क्यों न हों, यदि पारिवारिक जीवन में आंतरिक गरिमा, सुव्यवस्था और सद्गुणों का अभाव हो, तो उसकी पूर्णता कम हो जाती है। इस प्रकार परिवार की

वास्तविक समृद्धि केवल बाहरी संपदा पर नहीं, बल्कि उसके आंतरिक गुणों और संबंधों की गुणवत्ता पर निर्भर करती है।

प्रेम में नारी की भावनात्मक अभिव्यक्ति

इन्बत्तुप्पाल् में नायिका के प्रेम, वियोग, विरह-वेदना, मान तथा अन्य आंतरिक भावनाओं को एक स्वतंत्र और विशिष्ट स्वर के साथ अभिव्यक्त किया गया है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि तिरुक्कुऱळ् में नारी को केवल पारिवारिक उत्तरदायित्व निभाने वाली व्यक्ति के रूप में ही नहीं, बल्कि गहरी भावनाओं, इच्छाओं और संवेदनाओं से संपन्न व्यक्तित्व के रूप में भी देखा गया है।

इस प्रकार यह भाग जीवनसंगिनी की गरिमा, परिवार में उसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका तथा प्रेममय जीवन में उसकी भावनात्मक अभिव्यक्ति—इन तीनों पक्षों को स्पष्ट रूप से सामने लाता है।

5.22. तिरुक्कुऱळ् में प्रबंधन

यद्यपि 'प्रबंधन' शब्दावली तिरुक्कुऱळ् में प्रत्यक्ष रूप से प्रयुक्त नहीं हुई है, तथापि नियोजन, मानव-संसाधन का चयन, समय की पहचान, स्थान की पहचान, उत्तरदायित्व सौंपना, निर्णय लेना तथा निगरानी रखना जैसे प्रबंधन के अनेक तत्व पोरुट्प्पाल् में व्यापक रूप से पाए जाते हैं। किसी भी कार्य को आरंभ करने से पहले उसका उचित नियोजन आवश्यक है। किंतु निर्णय लेने के बाद भी बार-बार विचार करते रहना कार्यक्षमता को प्रभावित कर सकता है। इस विचार को निम्नलिखित कुऱळ् अभिव्यक्त करता है-

எண்ணித் துணிக கருமம் துணிந்தபின்
எண்ணுவம் என்பது இழுக்கு. (குறள் **467)**

ऎण्णित् तुणिह करुमम् तुणिन्दपिऩ्
ऎण्णुवम् ऎऩ्बदु इऴुक्कु। (कुऱळ् 467)

कार्य प्रवेश पूर्व, खूब कर लो चिंतन।
प्रवेश पश्चात करना, बेकार वह मंथन।।

* मंथन - सोचना.

किये जाने वाला कार्य और वह कार्य करने के तरीके आदि विषयों पर करने से पहले ही खूब चिंतन-मनन करके वह कार्य आरम्भ करना चाहिए। यह सोचना कि कार्य आरम्भ करने के बाद उस पर विचार कर लें, बहुत बड़ी भूल है।

अर्थात् किसी कार्य को करने से पहले उसके संबंध में भली-भाँति विचार कर लेना चाहिए; किंतु एक बार निर्णय लेने के बाद फिर उसी विषय पर संदेह या अनावश्यक विचार करते रहना उचित नहीं है।

मानव-संसाधन प्रबंधन

उचित व्यक्ति का चयन करना, उसे कार्य का उत्तरदायित्व सौंपना तथा निर्धारित समय के भीतर उस कार्य को पूरा करवाना-इन सबमें मानव-संसाधन की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। उपलब्ध मानव-संसाधन का कुशलतापूर्वक उपयोग सफलता का मार्ग प्रशस्त करता है। आधुनिक प्रबंधन-व्यवस्था में इसे एक श्रेष्ठ प्रबंधन-सिद्धांत माना जाता है। तिरुक्कुऱळ् में भी इस प्रकार के विचार विभिन्न स्थानों पर अभिव्यक्त हुए हैं। उनमें से एक कुऱळ् है-

இதனை இதனால் இவன்முடிக்கும் என்றாய்ந்து
அதனை அவன்கண் விடல். (குறள் **517)**

इदऩै इदऩाल् इवऩ्मुडिक्कुम् ऎऩ्ऱाय्न्दु
अदऩै अवऩ्कण् विडल्। (कुऱळ् 517)

कौन सा काम किस रीत, कौन करे यह जान।
वह काम उसे सौंपना, चहिए यह तुम जान॥

* चहिए - चाहिए।

किस कार्य को, किस तरह, किन साधनों से करने में कौन सक्षम है इन सभी बातों का खूब विचार करके फिर उस कार्य को उस व्यक्ति के पास सौंपकर निश्चिंत रहना चाहिए।

कार्य की प्रकृति, उसे पूरा करने की विधि तथा उसे संपन्न करने वाले व्यक्ति की क्षमता का मूल्यांकन करने के बाद ही उसे वह उत्तरदायित्व सौंपना चाहिए। यह क्षमता-आधारित कार्य-विभाजन का एक उत्कृष्ट सिद्धांत है।

समय और कार्यान्वयन

समय और स्थान किसी कार्य की सफलता में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसलिए कार्य करते समय इन दोनों तत्वों को ध्यान में रखना चाहिए। इस तथ्य को निम्नलिखित कुऱळ् स्पष्ट करता है—

ஞாலம் கருதினும் கைகூடும் காலம்
கருதி இடத்தால் செயின். (குறள் **484)**

ञालम् करुदितुम् कैकूडुम् कालम्
करुदि इडत्ताऱ् सॆयिऩ्. (कुऱळ् 484)

यदि चाहे संसार भी, आ जाएगा हाथ।
जब काम करे अनुकूल, समय-स्थान के साथ॥

यदि कोई व्यक्ति अनुकूल स्थान और अवसर पाकर कार्य करे तो विश्व को भी वश में कर सकता है।

अर्थात् उचित समय और उपयुक्त स्थान को पहचानकर कार्य किया जाए, तो बड़े से बड़ा लक्ष्य भी प्राप्त किया जा सकता है। इसलिए प्रबंधन में केवल संसाधन ही महत्त्वपूर्ण नहीं हैं; समय और परिस्थितियाँ भी महत्त्वपूर्ण संसाधन हैं।

तिरुक्कुरल में प्रतिपादित प्रबंधन-दृष्टि को इस प्रकार संक्षेपित किया जा सकता है—

नियोजन → विश्लेषण → योग्य व्यक्ति का चयन → समय और परिस्थिति को समझकर कार्य करना → दृढ़तापूर्वक कार्य को पूरा करना।

अतः अच्छा प्रबंधन अधिकाधिक कार्य करने का नाम नहीं है; बल्कि उचित कार्य को, उचित व्यक्ति के माध्यम से, उचित विधि से और उचित समय पर सफलतापूर्वक पूरा करना ही वास्तविक प्रबंधन है।

5.23. विश्व भाषाओं में तिरुक्कुरळ्

यद्यपि तिरुक्कुऱळ् का उद्भव तमिऴ् भाषा में हुआ है, इसके केंद्रीय विचार मानव-जीवन से जुड़े सार्वभौमिक प्रश्नों को स्पर्श करते हैं। सदाचार, प्रेम, न्याय, मित्रता, शासन, शिक्षा, श्रम, परिवार और प्रेम-संबंध जैसे विषय संसार के सभी मनुष्यों के लिए समान रूप से प्रासंगिक हैं। इसी कारण तिरुक्कुऱळ् को 'विश्व का सार्वभौमिक ग्रंथ' कहा जाता है। विभिन्न भाषाओं के लोगों द्वारा तिरुक्कुऱळ् का अपनी-अपनी भाषाओं में अनुवाद किए जाने का मूल कारण यही है कि इसमें सार्वभौमिक मानवीय विचार निहित हैं।

शिक्षा मनुष्य को देश और नगर जैसी सीमाओं से परे जाने में सक्षम बनाती है। उसी प्रकार तिरुक्कुऱळ् भी अनुवादों के माध्यम से अपनी मूल भाषा की सीमाओं को पार कर विभिन्न देशों और समाजों के लोगों तक पहुँचा है।

तिरुक्कुऱळ् का अनुवाद केवल शब्दों को एक भाषा से दूसरी भाषा में बदल देना नहीं है। दो पंक्तियों में संकेंद्रित कुऱळ् की अर्थ-गहनता, उपमा, व्याकरणिक संरचना तथा सांस्कृतिक सूक्ष्मताओं को दूसरी भाषा में अभिव्यक्त करना एक बड़ी चुनौती है। इसलिए प्रत्येक अनुवाद, मूल ग्रंथ और नई भाषायी-सांस्कृतिक परिस्थिति के बीच निर्मित एक सांस्कृतिक सेतु है।

तिरुक्कुऱळ् की वैश्विक प्रासंगिकता केवल उसके अनुवादों की संख्या से निर्धारित नहीं होती। मानव-जीवन के मूलभूत प्रश्नों को अत्यंत संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करने की उसकी क्षमता ही उसके व्यापक पाठन का प्रमुख कारण है।

"एक अच्छा मनुष्य बनकर कैसे जिया जाए?", "सत्ता का उपयोग किस प्रकार किया जाए?", "धन का वास्तविक प्रयोजन क्या है?", "मित्रता कैसी होनी चाहिए?", "दूसरों को हानि पहुँचाए बिना किस प्रकार जीवन जिया जाए?"—जैसे प्रश्न समय और भाषा की सीमाओं से परे हैं तथा संसार के सभी मनुष्यों के लिए समान रूप से प्रासंगिक हैं।

तिरुक्कुऱळ् का भारतीय भाषाओं, यूरोपीय भाषाओं तथा दक्षिण-पूर्व एशियाई भाषाओं सहित अनेक भाषाओं में अनुवादित होना इस बात का प्रमाण है कि तिरुक्कुऱळ् वास्तव में विश्व का सार्वभौमिक ग्रंथ है। इन अनुवादों के माध्यम से तमिऴ् तथा अन्य भाषायी-सांस्कृतिक परंपराओं के बीच ज्ञान और संस्कृति का आदान-प्रदान भी संभव हुआ है।

तिरुक्कुऱळ् तमिऴ् की एक अमूल्य धरोहर के रूप में जन्म लेकर, अनुवादों के माध्यम से व्यापक मानव-समाज के साथ संवाद करने वाले ग्रंथ के रूप में विकसित हुआ है। इसकी विश्व-यात्रा की शक्ति केवल इसके संक्षिप्त आकार में नहीं है; बल्कि उस संक्षिप्त रूप के भीतर समाहित विस्तृत मानवीय चिंतन में है। भाषाएँ बदल सकती हैं, किंतु प्रेम, सदाचार, न्याय और मानवतावाद की आवश्यकता कभी नहीं बदलती। यही सार्वभौमिक मानवीयता तिरुक्कुऱळ् को भाषा की सीमाओं को पार कर निरंतर विश्व की ओर यात्रा करने के लिए प्रेरित करती है।

इस प्रकार 'वाऩ्मऱै वळ्ळुवम्' नामक इस अध्याय में हमें विश्व के सार्वभौमिक ग्रंथ तिरुक्कुऱळ् द्वारा प्रतिपादित विभिन्न विषयों और विचारों की जानकारी प्राप्त हुई। अगले भाग में 'कुरळ्-मणिमाला' के माध्यम से तिरुक्कुऱळ् का अध्ययन करेंगे।

6. कुऱळ्-मणिमाला

तिरुक्कुऱळ् के अरत्तुप्पाल् और पॊरुट्प्पाल् से प्रत्येक अध्याय के लिए एक-एक कुऱळ् का चयन करके इन कुऱळों का संकलन 'कुऱळ्-मणिमाला' के रूप में किया गया है। यदि प्रतिदिन एक कुऱळ् का अध्ययन किया जाए, तो इस प्रकार मुप्पाल् (अरम्, पोरुल् और इन्बम्) का समग्र रूप से अध्ययन किया जा सकता है।

அறத்துப்பால்

अऱत्तुप्पाल् - धर्म-खण्ड

1. கடவுள் வாழ்த்து

कडवुळ् वाऴ्त्तु - ईश-वंदना

அகர முதல எழுத்தெல்லாம் ஆதி
பகவன் முதற்றே உலகு. (குறள் 1)

अहर मुदल ऍऴुत्तॆल्लाम् आदि
बगवऩ् मुदऱ्ऱे उलहु । (कुऱळ् 1)

आखर सब के आदि में, है अकार का मूल ।
सारे जग का आदि तो, आदि भगवान मूल॥

* आखर - अक्षर.

अकार जो सारी वर्णमालाओं का आदि है, वैसे ही सारे विश्व का आधार भगवान है।

2. வான்சிறப்பு

वाऩ् सिऱप्पु - वृष्टि का महत्व

வான்நின்று உலகம் வழங்கி வருதலால்
தான்அமிழ்தம் என்றுணரல் பாற்று. (குறள் 11)

वाऩ्निऩ्ऱु उलहम् वऴङ्गि वरुदलाल्
ताऩ्अमिऴ्दम् ऍऩ्ऱुणरल् पाऱ्ऱु। (कुऱळ् 11)

मेह पर निर्भर रहता, है दुनिया यह जान।
माना जाता है तभी, वृष्टि अमिय समान॥

वर्षा के कारण धरती के जीव जीवित रहते हैं। अत: विश्व के प्राणियों के लिए वर्षा अमृत समान है।

3. நீத்தார் பெருமை

नीत्तार् पॆरुमै - संतों की श्रेष्ठता

அந்தணர் என்போர் அறவோர்மற் றெவ்வுயிர்க்கும்
செந்தண்மை பூண்டுஒழுக லான். (குறள் 30)

अंदणर् ऐन्बोर् अऱवोर्मऱ् ऱॆव्वुयिर्क्कुम्
सेंदण्मै पूण्डुओऴुह लान्। (कुऱळ् 30)

जो सब जीवों से करे, कारुण्य व्यवहार।
धर्मनिष्ठ वे कहलाय, विप्र दयालु अपार॥

जीव मात्र से प्रेम कर श्रेष्ठ व्यवहार करने वाला धर्मानुयायी सज्जन ही विप्र (श्रेष्ठ) कहा जाता है।

4. அறன் வலியுறுத்தல்

अऱन् वलियुऱुत्तल् - धर्म पर आग्रह

அன்றறிவாம் என்னாது அறம்செய்க மற்றது
பொன்றுங்கால் பொன்றாத் துணை. (குறள் 36)

अन्ऱऱिवाम् ऐन्नादु अऱम्सेय्ह मऱ्ऱदु
पॊन्ऱुङ्गाल् पॊन्ऱात् तुणै। (कुऱळ् 36)

काल करें ना सोचकर, आज करें सत्कर्म।
अंतिम समय आने पर, चिर साथी वह धर्म॥

कल या बाद में करें न सोचकर युवावस्था में ही धर्म का पालन करना चाहिए। क्योंकि जीवन का अंतिम समय आने पर वही धर्मानुष्ठान स्थिर सहायक होता है।

5. இல்வாழ்க்கை

इल्वाऴ्क्कै - गार्हस्थ्य

வையத்துள் வாழ்வாங்கு வாழ்பவன் வான்உறையும்
தெய்வத்துள் வைக்கப் படும். *(குறள்* 50)

वैयत्तुळ् वाऴ्वाङ्गु वाऴ्बवन् वान्उऱैयुम्
दॆय्वत्तुळ् वैक्कप् पडुम्। (कुऱळ् 50)

जग में वह गृहस्थ जो, करे धर्म अनुष्ठान।
पाता है सुर-लोक के, देवों में सम्मान॥

जो व्यक्ति नियमानुसार धर्माचरण कर जीवन बिताता है, वह देव लोक के देवताओं में एक मानकर सम्मानित होता है।

6. வாழ்க்கைத் துணைநலம்

वाऴ्क्कैत् तुणैनलम् - सहधर्मिणी के गुण

மங்கலம் என்ப மனைமாட்சி மற்றதன்
நன்கலம் நன்மக்கட் பேறு. (குறள் 60)

मङ्गलम् ऎऩ्ब मऩैमाट्चि मऱ्ऱदऩ्
नऩ्गलम् नऩ्मक्कट् पेऱु। (कुऱळ् 60)

गृह का जयमंगल है, स्त्री जो गुणी महान।।
स्त्री का सद्भूषण होता, है उत्तम संतान॥

पत्नी का सद्गुणी होना ही गृहस्थी में मंगल होता है। सुपुत्रों को जन्म देना ही उसका सुअलंकरण होता है।

7. மக்கட்பேறு

मक्कट्पेऱु - संतान प्राप्ति

குழலினிது யாழினிது என்பதம் மக்கள்
மழலைச்சொல் கேளா தவர். (குறள் 66)

कुऴलिऩिदु याऴिऩिदु ऎऩ्बदम् मक्कळ्
मऴलैच्चॊल् केळा दवर्। (कुऱळ् 66)

वे कहते वेणी मधुर, मधुर है वीन साथ।
जिसने ना सुनी अपने, शिशु की तुतली बात॥

जिन्होंने अपने बच्चों की तुतली बोली सुनकर उसकी मधुरता का अनुभव नहीं किया हो, वे ही मुरली और वीणा का नाद मधुर कहते हैं।

8. அன்புடைமை

अऩ्बुडैमै - प्रेमभाव

அன்பிலார் எல்லாம் தமக்குரியர் அன்புடையார்
என்பும் உரியர் பிறர்க்கு. (குறள் 72)

अऩ्बिलार् ऎल्लाम् तमक्कुरियर् अऩ्बुडैयार्
ऎऩ्बुम् उरियर् पिऱर्क्कु। (कुऱळ् 72)

प्रेमहीनों का सब कुछ, निज का होता जान।
परहित हेतु प्रेमी जन, देते *हाड़ भी दान॥

*हाड़ - हड्डी

जिनके मन में दूसरों के प्रति प्रेम नहीं होता, वे सारी चीजें अपने लिए जमा कर रखते। पर जिनके मन में दूसरों के प्रति प्रेम होता है, वे दूसरों के कल्याण के लिए अपनी हड्डी भी दान कर देते।

9. விருந்தோம்பல்

विरुन्दोम्बल् - आतिथ्य

மோப்பக் குழையும் அனிச்சம் முகம்திரிந்து
நோக்கக் குழையும் விருந்து. (குறள் 90)

मोप्पक् कुऴैयुम् अऩिच्चम् मुहम्तिरिन्दु
नोक्कक् कुऴैयुम् विरुंदु। (कुऱळ् 90)

सूंघा 'अनिच्च' कुसुम को, झट वह मुरझा जाय।
मुँह फेर ताकने से, सूख अतिथि-मुख जाय॥

जैसे 'अनिच्चम' पुष्प को सूंघते ही मुर्झा जाता है, वैसे ही प्रेमविहीन दृष्टि से देखने मात्र से अतिथि का मुँह उदास हो जाता है।

* 'अनिच्चम' तमिऴ्नाडु का एक पुष्प विशेष है, जो इतना कोमल है कि वह सूँघने मात्र से मुर्झा जाता है। इस पुष्प को हिंदी में जोंकमारी कहा जाता है।

10. இனியவை கூறல்

इऩियवै कूऱल् - मधुर वचन

இனிய உளவாக இன்னாத கூறல்
கனியிருப்பக் காய்கவர்ந் தற்று. (குறள் 100)

इऩिय उळवाह इऩ्ऩाद कूऱल्
कऩियिरुप्पक् काय्कवर्न् तऱ्ऱु। (कुऱळ् 100)

त्यागकर जो मधुर वचन, कहे कटु वचन जान।
छोड़कर फल पका हुआ, कच्चा ग्रहण समान॥

मधुर वचनों को तजकर कठोर वचनों का उपयोग करना पके हुए फलों को छोड़कर कच्चे फल खाने के समान है।

11. செய்ந்நன்றி அறிதல்

सॆय्न्नऩ्ऱि अऱिदल् - कृतज्ञता

செய்யாமல் செய்த உதவிக்கு வையகமும்
வானகமும் ஆற்றல் அரிது. (குறள் 101)

सॆय्यामल् सॆय्द उदविक्कु वैयहमुम्
वाऩहमुम् आऱ्ऱल् अरिदु। (कुऱळ् 101)

बिन उपकृत हुए करे, यदि कोई उपकार।
सुर-नर लोक भेंट करें, तुल्य न हो आभार॥

हमने किसी की सहायता नहीं की, ऐसी दशा पर यदि कोई हमारी सहायता करे, तो उसके बदले में भूलोक और देव लोक दोनों को भेंट स्वरूप देने पर भी उस मदद की समानता नहीं कर सकते।

12. நடுவுநிலைமை

नडुवुनिलैमै - तटस्थता

வாணிகம் செய்வார்க்கு வாணிகம் பேணிப்
பிறவும் தமபோல் செயின். (குறள் 120)

वाणिहम् सॆय्वार्क्कु वाणिहम् पेणिप्
पिऱवुम् तमपोल् सॆयिऩ्। (कुऱळ् 120)

पर-का माल भी अपना, मान करे व्यापार।
होत वाणिज्य का यही, अप्रतिम व्यवहार॥

* अप्रतिम – अनुपम, उत्तम.

श्रेष्ठ वणिक वृत्ति वह होती है जिस में वणिक अन्यों के मालों को भी अपना ही माल समझकर नेकी से व्यापार करें।

13. அடக்கமுடைமை

अडक्कमुडैमै - संयमशीलता

தீயினால் சுட்டபுண் உள்ளாறும் ஆறாதே
நாவினால் சுட்ட வடு. (குறள் 129)

तीयिऩाल् सुट्टपुण् उळ्ळाऱुम् आऱादे
नाविऩाल् सुट्ट वडु। (कुऱळ् 129)

आग से जला घाव भी, सम्भव है भर जाय।
जला हुआ कटु वचन का, दाग नहीं मिट जाय॥

आग से उत्पन्न घाव, भले ही बाहर से दाग रहे, पर भीतर से वह ठीक हो जाएगा। उसका दुख भी मन से मिट जाएगा। मगर कटु वचन से उत्पन्न घाव कभी मन से दूर नहीं होता। सदा दुख देता है।

14. ஒழுக்கமுடைமை

ऒऴुक्कमुडैमै - सदाचरण

ஒழுக்கம் விழுப்பம் தரலான் ஒழுக்கம்
உயிரினும் ஓம்பப் படும். (குறள் 131)

ऒऴुक्कम् विऴुप्पम् तरलाऩ् ऒऴुक्कम्
उयिरिऩुम् ओम्बप् पडुम्। (कुऱळ् 131)

सदाचार औ' संपदा, देता सुश्रेय जान।

अत: प्राणों से बढ़कर, रक्षणीय वह मान॥

सदाचार ही सबको संपन्न व महान बनाता है। इसलिए सदाचार प्राण से बढ़कर श्रेष्ठ होता है।

15. பிறனில் விழையாமை

पिऱऩिल् विऴैयामै - परस्त्री-मोह तजना

பிறன்மனை நோக்காத பேராண்மை சான்றோர்க்கு

அறனொன்றோ ஆன்ற ஒழுக்கு. (குறள் 148)

पिऱऩ्मऩै नोक्काद पेराण्मै साऩ्ऱोर्क्कु
अऱऩॊऩ्ऱो आऩ्ऱ ऒऴुक्कु। (कुऱळ् 148)

न देखना पर-दार को, पुरुषत्व है महान।

न संत का मात्र धर्म, धर्माचरण भी मान।।

परस्त्री पर काम भावना रहित पौरुष, जिस में हो, वही व्यक्ति सज्जन धर्मानुयायी और नैतिक माना जाता है।

16. பொறையுடைமை

पॊऱैयुडैमै - क्षमाशीलता

பொறுத்தல் இறப்பினை என்றும் அதனை

மறத்தல் அதனினும் நன்று. (குறள் 152)

पॊऱुत्तल् इऱप्पिऩै ऎऩ्ऱुम् अदनै
मऱत्तल् अदऩिऩुम् नऩ्ऱु। (कुऱळ् 152)

पर-कृत अत्याचार को, सदैव सहना उत्तम।

उससे बढ़कर उसीको, *विसरना अत्युत्तम॥

दूसरों के द्वारा किये जाने वाली असीम बुराइयों को सह लेना और क्षमा कर देना उत्तम होता है। उससे बढ़कर उन बुराइयों को भूल जाना और अत्युत्तम होता है।
*बिसरना - भूल जाना

17. அழுக்காறாமை

अऴुक्काऱामै - अनसूयता

ஒழுக்காறாக் கொள்க ஒருவன்தன் நெஞ்சத்து

அழுக்காறு இலாத இயல்பு. (குறள் 161)

ऒऴुक्काऱाक् कॊळ्ह ऒरुवऩ्तऩ् नॆञ्जत्तु

अऴुक्काऱु इलाद इयल्बु। (कुऱळ् 161)

मन में ईर्ष्या रहित हो, जिसका यह आचार।
उसका जीवन जगत में, अत्युत्तम है अपार।।

संसार में उसीका जीवन उत्तम माना जाता है, जो मन में ईर्ष्या न करना ही अपना धर्माचरण मानकर जीता है।

18. வெஃகாமை

वॆह्हामै - निर्लोभता

இறல்ஈனும் எண்ணாது வெஃகின் விறல்ஈனும்
வேண்டாமை என்னும் செருக்கு. (குறள் 180)

इऱल्ईनुम् ऎण्णादु वॆह्हिन् विऱल्ईनुम्
वेण्डामै ऎन्नुम् सॆरुक्कु। (कुऱळ् 180)

जीवन उसका विफल है, जो करे पर-धन लोभ।
सदैव जीवन सफल है, जिसके मन नहिं लोभ।।

परिणामों पर विचार किये बिना जो पर-धन पर लोभ करता है, वह जीवन में असफल हो जाता है। यदि वह लोभ करना छोड़ दे तो उसे जीवन में सफलता मिलती है।

19. புறங்கூறாமை

पुऱङ्कूऱामै - अपिशुनता (चुगलखोरी न करना)

ஏதிலார் குற்றம்போல் தம்குற்றம் காண்கிற்பின்
தீதுண்டோ மன்னும் உயிர்க்கு. (குறள் 190)

एदिलार् कुऱ्ऱम्पोल् तम्कुऱ्ऱम् काण्गिऱ्पिन्
तीदुण्डो मन्नुम् उयिर्क्कु। (कुऱळ् 190)

छिद्रान्वेषण सम कोई , देखे यदि निज दोष।
तो अविनाशी जीव को, क्यों होगा दुख ठोस॥

* छिद्रान्वेषण – दूसरे का दोष ढूँढना; ठोस दुख – कठोर दुख.

दूसरों के दोषों पर ध्यान देना छोड़कर लोग यदि अपने दोषों पर ध्यान देने लगे तो पर-निंदा की भावना से वे भी बच जाते और जीवन के सारे दुखों से भी मुक्त हो जाते हैं।

20. பயனில சொல்லாமை

पयऩ्इल सॊल्लामै - व्यर्थ-प्रलाप न करना

சொல்லுக சொல்லில் பயனுடைய சொல்லற்க
சொல்லில் பயனிலாச் சொல். (குறள் 200)

सॊल्लुह सॊल्लिल् पयत्तुडैय सॊल्लऱ्क
सॊल्लिल् पयऩिलाच् चॊल्। (कुऱळ् 200)

बात करो तो ऐसी कर, जिसका हो कुछ लाभ।
ना कहना बातें कभी, जिसका नहिं कुछ लाभ॥

हमें सारयुक्त ऐसी बातें ही करनी चाहिए, जिसका कोई प्रयोजन हो।। निष्प्रयोजन व निस्सार बातें करने से बढ़कर न बोलना ही बेहत्तर है।

21. *தீவினையச்சம்*

तीविऩैयच्चम् - कुकर्म भीति

தீயவை தீய பயத்தலால் தீயவை
தீயினும் அஞ்சப் படும். (குறள் 202)

तीयवै तीय पयत्तलाल् तीयवै
तीयिऩुम् अञ्चप् पडुम्। (कुऱळ् 202)

अहित करना ही है तो, पाप-कर्म की रीत।
उसे कराल आग समझ, उससे रह भयभीत॥

* रीत - नियम, गुण; कराल - भयंकर.

कुकर्मों से बुराइयाँ ही बुराइयाँ होती हैं। अत: कुकर्मों को अग्नि से भी खतरनाक समझकर उनको करने से डरना चाहिए।

22. *ஒப்புரவறிதல்*

ऒप्पुरवऱिदल् - लोकोपकारिता

கைம்மாறு வேண்டா கடப்பாடு மாரிமாட்டு
என்னாற்றும் கொல்லோ உலகு. (குறள் 211)

कैम्मारु वेण्डा कडप्पाडु मारिमाट्टु
ऎऩ्ऩाऱ्ऱुम् कॊल्लो उलहु। (211)

उपकारक ना चाहता, पाना प्रत्युपकार।
बदला पयोध को अहो, क्या देता संसार॥

* उपकारक - उपकारी; पयोध - बादल.

लोग वर्षा के लिए प्रत्युपकार में क्या करते हैं? कुछ नहीं। वर्षा की तरह जो भी अपना कर्तव्य करते हैं, उन्हें प्रत्युपकार करने की आवश्यकता नहीं है।

23. ஈகை

ईहै - दान

அற்றார் அழிபசி தீர்த்தல் அஃதொருவன்

பெற்றான் பொருள்வைப் புழி. (குறள் 226)

अऱ्ऱार् अऴिपसि तीर्त्तल् अह्दोरुवऩ्

पॆऱ्ऱाऩ् पॊरुळ्वैप् पुऴि। (226)

दीन-हीन जन की क्षुधा, जो मिटाता अशेष।

मानो धनिक की भावी, वही संचित निवेश ॥

* क्षुधा -भूख; निवेश - पूंजी.

* अघोर- भयंकर; निवेश-पूँजी, खजाना.

दीन दुखियों की अघोर क्षुधा को दूर करना चाहिए। वही भविष्य के लिए उसका संचित धन का सर्वोत्तम निवेश है।

24. புகழ்

पुहऴ् - सुयश

ஈதல் இசைபட வாழ்தல் அதுவல்லது

ஊதியம் இல்லை உயிர்க்கு. (குறள் 231)

ईदल् इसैपड वाऴदल् अदुवल्लदु

ऊदियम् इल्लै उयिर्क्कु। (कुऱळ् 231)

दान देकर दरिद्र को, जियो कर यश-लाभ ।

श्रेष्ठ इससे जीव को, कोई और न लाभ॥

दीन-दुखियों को दान देने से प्राप्त सुयश सहित जीना चाहिए। उससे बढ़कर जीवन में दूसरी कोई बड़ी उपलब्धि नहीं है।

25. அருளுடைமை

अरुळुडैमै - दयालुता

அருட்செல்வம் செல்வத்துள் செல்வம் பொருட்செல்வம்

பூரியார் கண்ணும் உள. (241)

अरुट्चेल्वम् सॆल्वत्तुळ् सॆल्वम् पॊरुट्चॆल्वम्

पूरियार् कण्णुम् उळ। (कुऱळ् 241)

सभी धनों में श्रेष्ठ है, दयारूप धन जान।

भौतिक धन तो नीच के, पास भी भरा जान॥

सब प्रकार की धन-संपदाएँ, तो नीच लोगों के पास भी हो सकती है। मगर धन-संपदाओं में सब से श्रेष्ठ होता है दया-भाव, जो श्रेष्ठ लोगों के पास मात्र होता है।

26. புலால் மறுத்தல்

पुलाल् मर्‌ुत्तल् - मांसाहार निषेध

கொல்லான் புலாலை மறுத்தானைக் கைகூப்பி

எல்லா உயிரும் தொழும். (குறள் 260)

कॊल्लाऩ् पुलालै मर्‌ुत्ताऩैक् कैकूप्पि

ऎल्ला उयिरुम् तॊऴुम्। (कुर्‌ळ् 260)

जीव हिंसा जो न करे, और ना मांस-भक्षण।

सारा जग कर जोड़कर, करता उनका नमन॥

जो जीवहिंसा और मांसाहार नहीं करते ऐसे उदार हृदय व्यक्तियों को विश्व के सारे जीव हाथ जोड़कर जुहार करेंगे।

* जुहार - अभिवादन.

27. தவம்

दवम् - तपस्या

உற்றநோய் நோன்றல் உயிர்க்குஉறுகண் செய்யாமை

அற்றே தவத்திற்கு உரு. (குறள் 261)

उर्‌्रनोय् नोऩ्र्‌ल् उयिर्क्कुउर्‌ुकण् सॆय्यामै

अर्‌्रे तवत्तिर्‌्कु उरु। (कुर्‌ळ् 261)

खुद का दुख सहना और, नहीं जीव-वध जान।

तपोनिष्ठ का अभिलक्षण, होता है यह मान॥

अपने दुखों को शांति से सह लेना तथा अन्य जीवों को कष्ट न पहुँचाना ही तपस्या का लक्षण है।

28. கூடாவொழுக்கம்

कूडावोऴुक्कम् - मिथ्याचार

வலியில் நிலைமையான் வல்லுருவம் பெற்றம்

புலியின்தோல் போர்த்துமேய்ந் தற்று. (குறள் 273)

वलियिल् निलैमैयाऩ् वल्लुरुवम् पॆर्‌्रम्

पुलियिऩ्तोल् पोर्त्तुमेय्न् दर्‌्रु। (कुर्‌ळ् 273)

तपोधन का रूप धरा, ना दमन-शक्ति जान।

वह बाघ चर्म ओढ़कर, खेत चरे गौ मान॥

दुर्बल मानसिकता वाला व्यक्ति शक्तिशाली तपोधन का रूप धारण कर दूसरों को ठगता है, तो वह कार्य ऐसा है, जैसे कोई गाय व्याघ्र-चर्म ओढ़कर फसल चर रही हो।

29. கள்ளாமை

कळ्ळामै - अस्तेय

எள்ளாமை வேண்டுவான் என்பான் எனைத்தொன்றும்

கள்ளாமை காக்கதன் நெஞ்சு. (குறள் 281)

ऍळ्ळामै वेण्डुवाऩ् ऍऩ्बाऩ् ऍऩैत्तोऩ्ऱुम्

कळ्ळामै काक्कतऩ् नॆञ्जु। (कुऱळ् 281)

अपयश से अगर कोई, चाह करे, बच जाय।

पर-धन हरण की मन में, सोच न लाया जाय॥

जो व्यक्ति अपने को अपयश से बचाना चाहता है, उसे चाहिए कि वह छल-कपट से किसी अन्य की वस्तु का अपहरण करने की बात मन में भी न सोचें।

30. வாய்மை

वाय्मै - सत्य

வாய்மை எனப்படுவது யாதெனின் யாதொன்றும்

தீமை இலாத சொலல். (குறள் 291)

वाय्मै ऍऩप्पडुवदु यादेऩिऩ् यादोऩ्ऱुम्

तीमै इलाद सॊलल्। (कुऱळ् 291)

अन्य का अहित जो वचन, नाहीं करता जान।

सत्य के लिए वह सही , परिभाषा है मान॥

किसी की बुराई न करने वाला वचन बोलना ही सत्य की परिभाषा है।

31. வெகுளாமை

वॆहुळामै - अक्रोध

தன்னைத்தான் காக்கின் சினம்காக்க காவாக்கால்

தன்னையே கொல்லும் சினம். (குறள் 305)

तऩ्ऩैत्ताऩ् काक्किऩ् सिऩम्काक्क कावाक्काल्

तऩ्ऩैये कॊल्लुम् सिऩम्। (कुऱळ् 305)

खुद की रक्षा चाहे तो, करो क्रोध का नाश।

नहीं तो वह कर देगा, तेरा पूरा नाश॥

अगर कोई अपनी रक्षा करना चाहे तो उसे अपने क्रोध पर नियन्त्रण करना चाहिए। न करे तो वही क्रोध उसका सर्वनाश कर देगा।

32. ***இன்னா செய்யாமை***

इऩ्ऩा सॆय्यामै - अहित न करना

இன்னாசெய் தாரை ஒறுத்தல் அவர்நாண

நன்னயம் செய்து விடல். (குறள் 314)

इऩ्ऩासॆय् दारै ऒऱुत्तल् अवर्नाण

नऩ्ऩयम् सॆय्दु विडल्। (कुऱळ् 314)

अहित किया तो हित करो, अहित व हित झट भूल ।

पानी-पानी हो जाय, यही उसे त्रिशूल॥

अहित करने वाले को यदि दण्ड देना चाहे, तो उसके अपकार को क्षमा करके उसका उपकार कर दे, जिस से वह बहुत लज्जित हो जाए। फिर उसका अपकार और तुम्हारा उपकार दोनों को उसी क्षण भूल जाना चाहिए।

33. ***கொல்லாமை***

कॊल्लामै - अहिंसा

பகுத்துண்டு பல்லுயிர் ஓம்புதல் நூலோர்

தொகுத்தவற்றுள் எல்லாம் தலை. (குறள் 322)

पहुत्तुण्डु पल्लुयिर् ओम्बुदल् नूलोर्

तॊहुत्तवऱ्ऱुळ् ऎल्लाम् तलै। (कुऱळ् 322)

मिल-बाँटकर खाना औ', जीव सबका पालन।

सबसे श्रेष्ठ धर्म है, विज्ञों का अनुमोदन॥

* अनुमोदन - मान्य, समर्थन.

जो मिलता है उसे मिल-बाँटकर खाना चाहिए और प्राणि मात्र की रक्षा करनी चाहिए। यही जग के सभी धर्मों और आचार-संहिताओं के अनुसार सबसे श्रेष्ठ धर्म है।

34. ***நிலையாமை***

निलैयामै - अनित्यता

நெருநல் உளனொருவன் இன்றில்லை என்னும்

பெருமை உடைத்திவ் வுலகு. (குறள் 336)

नेरुनल् उळऩोरुवऩ् इऩ्ऱिल्लै ऎऩ्ऩुम्
पेरुमै उडैत्तिव् वुलहु। (कुऱळ् 336)

कल जो था उसका आज, नहीं कोई अस्तित्व।
नश्वर जगत का जानो, उसका यही महत्व॥

जो आदमी कल था उसका नामो-निशान तक आज नहीं है। समझो कि क्षणभंगुर इस संसार की महिमा यही है।

35. துறவு

तुऱवु - संन्यास

பற்றுக பற்றற்றான் பற்றினை அப்பற்றைப்
பற்றுக பற்று விடற்கு. (குறள் 350)

पऱ्ऱुह पऱ्ऱऱ्ऱाऩ् पऱ्ऱिऩै अप्पऱ्ऱैप्
पऱ्ऱुह पऱ्ऱु विडऱ्कु। (कुऱळ् 350)

अनासक्त की आसक्ति, में यदि हो आसक्ति।
वह अनुरक्ति देती है, सम्मोहनों से मुक्ति॥

भव सागर की सभी आसक्तियों और बंधनों से मुक्ति पाने के लिए नित्य-मुक्त व अनासक्त ईश्वर के प्रति दृढ़ आसक्ति होनी चाहिए। अन्य आसक्तियों को त्यागने के लिए ईश्वर के प्रति आसक्ति रखनी चाहिए।

36. மெய்யுணர்தல்

मॆय्युणर्दल् - सत्यबोध

எப்பொருள் எத்தன்மைத்து ஆயினும் அப்பொருள்
மெய்ப்பொருள் காண்பது அறிவு. (குறள் 355)

ऎप्पॊरुळ् ऎत्तऩ्मैत्तु आयिऩुम् अप्पोरुळ्
मॆय्प्पॊरुळ् काण्बदु अऱिवु। (कुऱळ् 355)

जो पदार्थ ज्यों दीखे, उसको सत्य न मान।
उसमें निहित तथ्य बोध , खोजना सच्चा ज्ञान॥

इस भ्रम में न पड़कर कि जिस चीज को जिस रूप में देखते हैं उसका वही रूप सत्य है, उसके पीछे, जो सत्य छिपा है, उसकी जानकारी पाना ही सच्चा ज्ञान है।

37. அவா அறுத்தல்

अवा अऱुत्तल् - तृष्णा-दमन

அவாஎன்ப எல்லா உயிர்க்கும்எஞ் ஞான்றும்
தவாஅப் பிறப்பீனும் வித்து. (குறள் 361)

अवाऎऩ्ब ऎल्ला उयिर्क्कुम्ऎञ् आऩ्ऱुम्
तवाअप् पिऱप्पीऩुम् वित्तु। (कुऱळ् 361)

सब जीवों को सब समय, तृष्णा बिया अचूक।
वही पैदा कर देता, जन्म - मरण की हूक॥

* तृष्णा - लालच; बिया - बीज; हूक - दुख.
कहा जाता है कि तृष्णा ही वह बीज है, जिसके कारण सभी जीव सभी काल में निरंतर पुन: पुन: जन्म लेता रहता है।

38. ஊழ்

ऊऴ् - प्रारब्ध

ஊழின் பெருவலி யாவுள மற்றொன்று
சூழினும் தான்முந் துறும். (குறள் 380)

ऊऴिन् पॆरुवलि यावुळ मऱ्ऱॊन्ऱु
सूऴिऩुम् ताऩ्मुन् तुऱुम्। (कुऱळ् 380)

भाग्य से बढ़कर यहाँ, बड़ी शक्ति ना मान।
उससे बचने यत्न कर, सम्मुख खड़ा वह जान ।।

प्रारब्ध से बढ़कर बलवान और कौन है? लोग भले ही प्रारब्ध से बचने के लिए दूसरा कोई मार्ग ढूँढने लगे, तो वहाँ भी प्रारब्ध ही सामने आकर खड़ा खड़ा रहता है।

2. பொருட்பால்

पॊरुट्पाल् - अर्थ-खण्ड

39. இறைமாட்சி

इऱैमाट्चि - नरेश-महिमा

முறைசெய்து காப்பாற்றும் மன்னவன் மக்கட்கு
இறையென்று வைக்கப் படும். (குறள் 388)

मुऱैसॆय्दु काप्पाऱ्ऱुम् मऩ्ऩवऩ् मक्कट्कु
इऱैयॆऩ्ऱु वैक्कप् पडुम्। (कुऱळ् 388)

न्यायिक-शासन, जन-रक्षण, जो नृप करे जान।
उसका आन प्रजा करे, देवता के समान॥

* आन - आदर, सम्मान.

न्यायपूर्वक शासन करते हुए प्रजा की सुरक्षा करने वाला राजा मानवों में देवता माना जाता है और विशिष्ट आदर का पात्र बन जाता है।

40. கல்வி

कल्वि - शिक्षा

கற்க கசடறக் கற்பவை கற்றபின்
நிற்க அதற்குத் தக. (குறள் 391)

कऱ्क कसडऱक् कऱ्पवै कऱ्ऱपिऩ्
निऱ्क अदऱ्कुत् तह। (कुऱळ् 391)

सीख सीखने योग्य सब, भ्रम रहित हो सीख।
सीख-प्राप्ति के पश्चात्, कर आचरण सटीक॥

सीखने योग्य ग्रन्थों को बिना संशय के अच्छी तरह सीखना चाहिए। सीखने के उपरान्त जीवन में उन शिक्षाओं का पालन करना चाहिए।

41. கல்லாமை

कल्लामै - अशिक्षा

விலங்கொடு மக்கள் அனையர் இலங்குநூல்
கற்றாரோடு ஏனை யவர். (குறள் 410)

विलङ्गॊडु मक्कळ् अऩैयर् इलङ्गुनूल्
कऱ्ऱारोडु एऩै यवर्। (कुऱळ् 410)

नर व पशु की तुलना में, जो होता है भेद।
शिक्षित औ' अशिक्षित में, होता वही विभेद॥

सद्ग्रन्थों का अध्ययन कर, जो सज्जन शिक्षित हुए हैं, उनकी तुलना में अशिक्षित लोगों की स्थिति मानवों के सामने जानवरों के समान होती है।

42. கேள்வி

केळ्वि - श्रवण

செல்வத்துள் செல்வம் செவிச்செல்வம் அச்செல்வம்
செல்வத்துள் எல்லாம் தலை. (குறள் 411)

सॆल्वत्तुल् सॆल्वम् सॆविच्चॆल्वम् अच्चॆल्वम्
सॆल्वत्तुऴ् ऎल्लाम् तलै। (कुऱळ् 411)

सब धनों में श्रवण-धन, होता है धन मान।
सारे धनों में श्रेष्ठ, धन है श्रवण-ज्ञान॥

श्रवण से प्राप्त ज्ञान श्रेष्ठ धन माना जाता है और यह धन अन्य सभी धनों में सर्वश्रेष्ठ होता है।

43. அறிவுடைமை

अऱिवुडैमै - बुद्धिमत्ता

எப்பொருள் யார்யார்வாய்க் கேட்பினும் அப்பொருள்
மெய்ப்பொருள் காண்பது அறிவு. (குறள் 423)

ऎप्पॊरुळ् यार्यार्वाय्क् केट्पिनुम् अप्पॊरुळ्
मॆय्प्पॊरुळ् काण्बदु अऱिवु। (कुऱळ् 423)

चाहे जिस किसी से भी, सुन ले जो भी बात।
बुद्धि श्रम करे जिससे, हो तत्व-बोध ज्ञात॥

जिस किसी से जो कोई विषय सुने तो उसे वैसे ही न अपनाकर उसमें निहित सत्यता को जानना ही बुद्धि का लक्षण है।

44. குற்றங்கடிதல்

कुऱ्ऱङ्गडिदल् - दोष-निवारण

தன்குற்றம் நீக்கிப் பிறர்குற்றம் காண்கிற்பின்
என்குற்றம் ஆகும் இறைக்கு. (குறள் 436)

तन्कुऱ्ऱम् नीक्किप् पिऱर्कुऱ्ऱम काण्गिऱ्पिऩ्
ऎन्कुऱ्ऱम् आहुम् इऱैक्कु। (कुऱळ् 436)

पहले निज का दोष फिर, दूर करे पर दोष।
सोचे ऐसा जो नृप, क्या हो सकता दोष॥

जो शासक अन्यों के दोषों पर विचार करने से पूर्व अपने दोषों पर विचार कर उन्हें दूर कर लेता है, क्या उसका कोई दोष हो सकता है? नहीं, वह सदैव दोषहीन रहता है।

45. பெரியாரைத் துணைக்கோடல்

पॆरियारैत् तुणैक्कोडल् - सज्जनों की सहायता

இடிப்பாரை இல்லாத ஏமரா மன்னன்
கெடுப்பார் இலானும் கெடும். (குறள் 448)

इडिप्पारै इल्लाद एमरा मन्ऩऩ्
कॆडुप्पार् इलाऩुम् कॆडुम्। (कुऱळ् 448)

जिस नरेश के डाँटते, मित्र न होते इष्ट।
दुश्मन के न होकर भी, वह खुद होता नष्ट ॥

जिस राजा के पास डाँटकर सलाह देने वाले आलोचक सचिव एवं मित्र नहीं हैं, नष्ट करने वाला कोई बाहरी शत्रु के न होते हुए भी वह राजा स्वयं विनाश को प्राप्त हो जाता है।

46. *சிற்றினம் சேராமை*

सिऱ्ऱिऩम् सेरामै - कुसंगति न करना

நிலத்தியல்பால் நீர்திரிந்து அற்றாகும் மாந்தர்க்கு
இனத்தியல்ப தாகும் அறிவு. (குறள் 452)

निलत्तियल्बाल् नीर्तिरिन्दु अऱ्ऱाहुम् मान्दर्क्कु
इऩत्तियल्ब दाहुम् अऱिवु। (कुऱळ् 452)

ज्यों सलिल का गुण बदले, माटी के अनुकूल।
त्यों मनुज का गुण बदले, संगति के अनुकूल॥

जिस प्रकार की मिट्टी में जल पड़ता है, वह उस मिट्टी की प्रकृति के अनुकूल बदल जाता है, उसी तरह मनुष्य जिस प्रकृति वाले लोगों की संगति में रहता है, वह उन साथियों की प्रकृति के अनुकूल बदल जाता है।

47. தெரிந்து செயல்வகை

तॆरिन्दु सॆयल्वहै - विचारकर कार्य करना

எண்ணித் துணிக கருமம் துணிந்தபின்
எண்ணுவம் என்பது இழுக்கு. (குறள் 467)

ऎण्णित् तुणिह करुमम् तुणिन्दपिऩ्
ऎण्णुवम् ऎऩ्बदु इऴुक्कु। (कुऱळ् 467)

कार्य प्रवेश पूर्व, खूब कर लो चिंतन।
प्रवेश पश्चात करना, बेकार वह मंथन।।

* मंथन - सोचना.

किये जाने वाला कार्य और वह कार्य करने के तरीके आदि विषयों पर करने से पहले ही खूब चिंतन-मनन करके वह कार्य आरम्भ करना चाहिए। यह सोचना कि कार्य आरम्भ करने के बाद उस पर विचार कर लें, बहुत बड़ी भूल है।

48. ***வலியறிதல்***

वलियऱिदल् - शक्ति का बोध

வினைவலியும் தன்வலியும் மாற்றான் வலியும்
துணைவலியும் தூக்கிச் செயல். (குறள் 471)

विऩैवलियुम् तऩ्वलियुम् माऱ्ऱाऩ् वलियुम्
तुणैवलियुम् तूक्किच् चॆयल्। (कुऱळ् 471)

कार्य-बल निज-बल शत्रु, और मित्र बल जान।
सोच-समझकर कार्य में, उद्यत होना जान॥

किसी कार्य में प्रवेश करने से पूर्व उस कार्य की गंभीरता, अपनी क्षमता, शत्रु की क्षमता और दोनों पक्षों के सहायकों की क्षमता आदि सब विषयों पर खूब सोच-विचार करके फिर उसमें प्रवेश करना चाहिए।

49. ***காலமறிதல்***

कालमऱिदल् - समय का बोध

கொக்கொக்க கூம்பும் பருவத்து மற்றதன்
குத்தொக்க சீர்த்த இடத்து. (குறள் 490)

कॊक्कॊक्क कूम्बुम् परुवत्तु मऱ्ऱदऩ्
कुत्तॊक्क सीर्त्त इडत्तु। (कुऱळ् 490)

रहना ताक में बक सम, बिना किए कुछ वार।
चोंच मार उसकी तरह, करो समय पर वार॥

उचित समय आने तक बगुले की तरह शांत होकर समय की प्रतीक्षा करनी चाहिए और उचित समय आने पर उसकी तरह तत्क्षण वार करना चाहिए।

50. ***இடனறிதல்***

इडऩऱिदल् - स्थान का बोध

நெடும்புனலுள் வெல்லும் முதலை அடும்புனலின்
நீங்கின் அதனைப் பிற. (குறள் 495)

नॆडुम्बुऩलुळ् वॆल्लुम् मुदलै अडुम्बुऩलिऩ्
नीङ्गिऩ् अदऩैप् पिऱ। (कुऱळ् 495)

गहरे जल में मगर की, अन्य जीव पर जीत।

जल से बाहर मगर पर, अन्य जीव की जीत।।

गहरे जल में मगर बलवान होकर अन्य सारे जीवों पर विजय पा लेता है और वही मगर जल से बाहर होने पर अन्य सारे जीव उसपर विजय पा लेते हैं।

51. தெரிந்து தெளிதல்

तॊरिन्दु तॊळिदल् - परखकर विश्वास करना

குணம்நாடிக் குற்றமும்நாடி அவற்றுள்
மிகைநாடி மிக்க கொளல். (குறள் 504)

गुणम्नाडिक् कुऱ्ऱमुम् नाडि अवऱ्ऱुळ्
मिहैनाडि मिक्क कॊळल्। (कुऱळ् 504)

गुण व दोष को परख कर, कर पश्चात पहचान।

मूल्यांकन करो उनमें, बहुतायत को जान॥

* मूल्यनिरूपण - मूल्यांकन, मूल्यन.

व्यक्ति के गुण और दोष दोनों का समीक्षण कर उनमें जो अधिक हो उसके आधार पर उस व्यक्ति का मूल्यनिरूपण करना चाहिए।

52. தெரிந்து வினையாடல்

तॊरिन्दु विऩैयाडल् - परखकर कार्य सौंपना

இதனை இதனால் இவன்முடிக்கும் என்றாய்ந்து
அதனை அவன்கண் விடல். (குறள் 517)

इदऩै इदऩाल् इवऩ्मुडिक्कुम् ऎऩ्ऱाय्न्दु
अदऩै अवऩ्कण् विडल्। (कुऱळ् 517)

कौन सा काम किस रीत, कौन करे यह जान।

वह काम उसे सौंपना, चहिए यह तुम जान॥

* चहिए - चाहिए।

किस कार्य को, किस तरह, किन साधनों से करने में कौन सक्षम है इन सभी बातों का खूब विचार करके फिर उस कार्य को उस व्यक्ति के पास सौंपकर निश्चिंत रहना चाहिए।

53. சுற்றந்தழால்

सुऱ्ऱन्दऴाल् - बंधुओं को प्रश्रय देना

காக்கை கரவா கரைந்துண்ணும் ஆக்கமும்

அன்னநீ ரார்க்கே உள. (குறள் 527)

काक्कै करवा करैन्दुण्णुम् आक्कमुम्

अन्ननी रार्क्के उळ। (कुऱळ् 527)

बिना छिपाए काँव कर, काक खाते अहार।

जिसका यह स्वभाव हो, उसीका धन अपार॥

* अहार - आहार; धन-वैभव

कौए खाद्य पदार्थ मिलनेपर उसे न छिपाते हैं और काँव - काँव कर अपने सब बंधुओं को बुलाते तथा मिल-बाँटकर खाते हैं। वैसा गुण, जिन व्यक्तियों में है उनके पास ही अमिट धन-सम्पत्ति रहती है।

54. பொச்சாவாமை

पॊच्चावामै - कर्तव्य अविस्मरण

முன்னுறக் காவாது இழுக்கியான் தன்பிழை
பின்னூறு இரங்கி விடும். (குறள் 535)

मुन्नुऱक् कावादु इऴुक्कियान् तन्पिऴै
पिन्नूऱु इरङ्गि विडुम्। (कुऱळ् 535)

पूर्व रक्षा किये बिना, जो रह जाता *भूल।
आपत्ति में पछताता, चिंतन कर निज भूल॥

* भूल - भूलना; भूल - गलती.

जो व्यक्ति भावी संकटों का अनुमान पहले से ही करके अपनी रक्षा की व्यवस्था करना भूल जाता है, वह बाद में संकटों के आने पर ही अपनी भूल पर बहुत पछतावा करेगा।

55. செங்கோன்மை

सॆङ्गोन्मै - सुशासन

வான்நோக்கி வாழும் உலகெல்லாம் மன்னவன்
கோல்நோக்கி வாழும் குடி. (குறள் 542)

वान्नोक्कि वाऴुम् उलहॆल्लाम् मन्नवन्
कोल्नोक्कि वाऴुम् कुडि। (कुऱळ् 542)

हैं वर्षा पर निर्भर ज्यों, जग के सारे जीव।

प्रजा सुशासन की त्यों, *ताक में हैं अतीव॥

*ताक में-प्रतीक्षा में

जैसे विश्व के सारे जीव वर्षा पर निर्भर होकर जीते हैं, वैसे ही सारी प्रजा राजा के सुशासन की तीव्र प्रतीक्षा में जीती हैं।

56. கொடுங்கோன்மை

कॊडुङ्गोऩ्मै - निरंकुश शासन

அல்லற்பட்டு ஆற்றாது அழுதகண் ணீரன்றே
செல்வத்தைத் தேய்க்கும் படை. (குறள் 555)

अल्लऱ्पट्टु आऱ्ऱादु अऴुदकण् णीरऩ्ऱे
सॆल्वत्तैत् तेय्क्कुम् पडै। (कुऱळ् 555)

उत्पीड़ित जन के नेत्र, बहाए अश्रु-धार।

नृप के श्री का नाशक, सैन्य जान अपार॥

अत्याचारी राजा की बर्बरता के कारण प्रजा जो आँसू बहाती है, वह उस राजा की समृद्धि का नाश करने वाला बड़ा सैन्य है।

57. வெருவந்த செய்யாமை

वॆरुवन्द सॆय्यामै - दण्ड में क्रूरता न दिखाना

தக்காங்கு நாடித் தலைச்செல்லா வண்ணத்தால்
ஒத்தாங்கு ஒறுப்பது வேந்து. (குறள் 561)

तक्काङ्गु नाडित् तलैच्चॆल्ला वण्णत्ताल्
ऒत्ताङ्गु ऒऱुप्पदु वेन्दु। (कुऱळ् 561)

सोच विचार कर नरपत, अपराधी का दोष।

दोष अनुरूप दण्ड दे, पुन: न हो वह दोष ॥

* नरपत - राजा.

अपराधी के अपराध को खूब जाँच-परखकर अपराध के अनुकूल अपराधि को उचित दण्ड दे, जिससे वह अपराधी दुबारा वह अपराध न करे-ऐसा न्याय करने वाला नरेश ही सुयोग्य शासक होता है।

58. கண்ணோட்டம்

कण्णोट्टम् - दया-दृष्टि

பெயக்கண்டும் நஞ்சுண்டு அமைவர் நயத்தக்க
நாகரிகம் வேண்டு பவர். (குறள் 580)

पॆयक्कण्डुम् नञ्जुण्डु अमैवर् नयत्तक्क
नाहरिहम् वेण्डु बवर्। (कुऱळ् 580)

ज़हर पिलाते जानकर, भी जो राजा लोग।
उदारता के इच्छुक हैं, करते उसका भोग॥

जो राजा संस्कृति-जन्य और शिष्ट कहलाना चाहता है वह अपने परिचित जन यदि विष पिलावे, तो यह जानते हुए भी कि उसे विष दिया जा रहा है, वह उनका दिया विष पी लेगा।

59. ஒற்றாடல்

ऑऱ्ऱाडल् - गुप्तचर-व्यवस्था

ஒற்றும் உரைசான்ற நூலும் இவையிரண்டும்
தெற்றென்க மன்னவன் கண். (குறள் 581)

ऑऱ्ऱुम् उरैसाऩ्ऱ नूलुम् इवैयिरण्डुम्
तॆऱ्ऱॆऩ्ग मऩ्ऩवऩ् कण्। (कुऱळ् 581)

अपने गुप्तचर एवं, असली नीतिशास्त्र।
नृप दोनों को मानकर, चले अपने नेत्र।।

* असली - प्रामाणिक.

राजा को चाहिए कि वह (नेकी और सक्षम) गुप्तचर और प्रामाणिक नीतिग्रन्थ इन दोनों को अपने नेत्र मानकर शा।

60. ஊக்கமுடைமை

ऊक्कमुडैमै - उत्साहयुक्तता

வெள்ளத் தனைய மலர்நீட்டம் மாந்தர்தம்
உள்ளத் தனையது உயர்வு. (குறள் 595)

वॆळ्ळत् तऩैय मलर्नीट्टम् मान्दर्तम्
उळ्ळत् तऩैयदु उयर्वु। (कुऱळ् 595)

कमल नली की *लंबान, जल की थाह समान।
मानव का वर्चस्व भी, उसके जोश समान॥

*लंबान-लंबाई; थाह- गहराई; * वर्चस्व - महिमा, गरिमा.

जैसे जल में खिलने वाले कमल जैसे फूलों का डंटल जल की गहराई के अनुसार लंबा होता है, वैसे मनुष्य का महत्व उसके उत्साह के अनुसार बढ़ता जाता है।

61. மடியின்மை

मडियिऩ्मै - आलस्यहीनता

நெடுநீர் மறவி மடிதுயில் நான்கும்
கெடுநீரார் காமக் கலன். (குறள் 605)

नॆडुनीर् मऱवि मडितुयिल् नाऩ्गुम्
कॆडुनीरार् कामक् कलऩ्। (कुऱळ् 605)

दीर्घसूत्रता सुस्ती, विस्मृति निद्रा ये जान।
जो डूबना चाहे उन्हें, ले जाते जलयान॥

* दीर्घसूत्रता - अति विलंब करना, प्रत्येक कार्य को देर में करने की आदत; सुस्ती - आलस; विस्मृति - भूलने का गुण; निद्रा - अतिनिद्रा करने का स्वभाव; जलयान - जलपोत, नाव.

दीर्घसूत्रता, आलस्य, विस्मरण और अधिक निद्रा ये चारों गुण ऐसी नौकाएँ हैं, जो उन लोगों को विनाश की तरफ ले जाती हैं, जो डूबना चाहते हैं।

62. ஆள்வினையுடைமை

आळ्विऩैयुडैमै - श्रमशीलता

அருமை உடைத்தென்று அசாவாமை வேண்டும்
பெருமை முயற்சி தரும். (குறள் 611)

अरुमै उडैत्तॆऩ्ऱु असावामै वेण्डुम्
पॆरुमै मुयऱ्चि तरुम्। (कुऱळ् 611)

दूभर सोच कार्य में, रहना नहीं निराश।
मिलती आप महानता, करे सतत प्रयास॥

* आप - स्वयं.

किसी कार्य को असंभव मानकर उत्साह नहीं खोना चाहिए। प्रयत्न करने से कार्य की क्षमता अपने आप सिद्ध हो जाती है।

63. இடுக்கணழியாமை

इडुक्कणऴियामै - संकट में अविचल रहना

இடுக்கண் வருங்கால் நகுக அதனை
அடுத்தூர்வது அஃதொப்பது இல். (குறள் 621)

इडुक्कण् वरुङ्गाल् नहुह अदऩै
अडुत्तूर्वदु अह्दॊप्पदु इल्। (कुऱळ् 621)

संकट जब आ पड़े तब, होना अति प्रसन्न।
संकट पार करने का, *और मार्ग न भिन्न॥

*और- दूसरा * भिन्न - अन्य.

संकट आने पर चिंता तजकर प्रसन्न होना चाहिए। उस संकट से पार पाने के लिए इससे बढ़कर दूसरा कोई उत्तम मार्ग नहीं है।

64. அமைச்சு

अमैच्चु - अमात्य का लक्षण

கருவியும் காலமும் செய்கையும் செய்யும்
அருவினையும் மாண்டது அமைச்சு. (குறள் 631)

करुवियुम् कालमुम् सॆय्हैयुम् सॆय्युम्
अरुविऩैयुम् माण्डदु अमैच्चु। (कुऱळ् 631)

साधन, काल, *रीति जान, नियमित कार्यसिद्धि।
जो करे वह दक्ष सचिव, जिसकी ऐसी बुद्धि॥

*रीति-उपाय; दक्ष-योग्य

जो हर कार्य केलिए आवश्यक साधनों का पता लगाकर, अनुकूल समय का चयन कर, नियमानुसार कार्य आरम्भ कर उसे सफलतापूर्वक संपन्न करता है वही सुयोग्य मंत्री है।

65. சொல்வன்மை

सॊल्वऩ्मै - वाक्पटुता

சொல்லுக சொல்லைப் பிறிதோர்சொல் அச்சொல்லை
வெல்லும்சொல் இன்மை அறிந்து. (குறள் 645)

सॊल्लुह सॊल्लैप् पिऱिदोर्सॊल् अच्चॊल्लै
वॆल्लुम्सॊल् इऩ्मै अऱिन्दु। (कुऱळ् 645)

बात करना चाहो तो, करना ऐसी बात।
अन्य कोई बात जिसे, नहीं कर सके मात॥

व्यक्ति को अपनी बात कहने से पूर्व यह निश्चित कर लेना चाहिए कि उसकी बात का खण्डन करने वाला दूसरा कोई शब्द न हो, उसके बाद ही वह, जो कहना चाहता है उसे कहना चाहिए।

66. வினைத்தூய்மை

विऩैत्तूय्मै - कर्म-शुद्धि

ஈன்றாள் பசிகாண்பான் ஆயினும் செய்யற்க
சான்றோர் பழிக்கும் வினை. (குறள் 656)

ईऩ्ऱाळ् पसिकाण्बाऩ् आयिऩुम् सॆय्यऱ्क
साऩ्ऱोर् पऴिक्कुम् विऩै। (कुऱळ् 656)

देख दुखी होना पड़े, जननी क्षुधा पीड़ित।
फिर भी नहीं करना है, कर्म सज्जन निंदित॥

अपनी माँ को भूख से पीड़ित देखकर दुखी होना पड़े, इस दशा में भी ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए, जोनों से निंद्य हो।

67. வினைத்திட்பம்

विऩैत्तिट्पम् - कर्म में दृढ़ता

எண்ணிய எண்ணியாங்கு எய்துப எண்ணியார்
திண்ணியர் ஆகப் பெறின். (குறள் 666)

ऎण्णिय ऎण्णियाङ्गु ऎय्दुब ऎण्णियार्
तिण्णियर् आहप् पॆऱिऩ्। (कुऱळ् 666)

संकल्पित सब सिद्धियाँ, यथा किया संकल्प।
संकल्पक पायगा यदि, हो अटूट संकल्प॥

कार्य की योजना बनाने वाला व्यक्ति यदि कार्य करने में दक्ष हो और संकल्प में दृढ़ हो, तो वह अपने संकल्प के अनुरूप कार्य में जरूर सिद्धि पाएगा।

68. வினைசெயல்வகை

विऩैसॆयल्वहै - कार्य प्रणाली

தூங்குக தூங்கிச் செயற்பால தூங்கற்க
தூங்காது செய்யும் வினை. (குறள் 672)

तूङ्गुह तूङ्गिच् चॆयऱ्पाल तूङ्गऱ्क
तूङ्गादु सॆय्युम् विऩै। (672)

विलंब के योग्य काम, जो हो कर सविलंब।
तत्काल जो करना उसे, झट कर दो अविलंब॥

जिन कार्यो को स्थगित करना हो कार्य की सफलता को ध्यान में रखकर उन्हें स्थगित करना चाहिए। और जिन कार्यों को तत्काल करना चाहिए उन्हें स्थगित किए बिना तुरन्त कर देना चाहिए।

69. தூது

तूदु - दौत्य

இறுதி பயப்பினும் எஞ்சாது இறைவற்கு
உறுதி பயப்பதாம் தூது. (குறள் 690)

इऱुदि पयप्पित्तुम् ऎञ्ञादु इऱैवऱ्कु
उऱुदि पयप्पदाम् तूदु। (कुऱळ् 690)

निज नृप के कल्याण में, चला जाय निज प्राण।
फिर भी *अभय करे वही, सच्चा दूत है जान॥

*अभय-निर्भय होकर

अपने प्राण ही चले जाए फिर भी उसकी परवाह किए बिना धैर्य के साथ अपने राजा का कल्याण करने वाला ही सच्चा दूत है।

70. மன்னரைச் சேர்ந்தொழுகல்

मऩ्ऩरैच् चेर्न्दॊऴुहल् - राजा से अनुकूल व्यवहार

அகலாது அணுகாது தீக்காய்வார் போல்க
இகல்வேந்தர்ச் சேர்ந்தொழுகு வார். (குறள் 691)

अहलादु अणुहादु तीक्काय्वार् पोल्ह
इहल्वेन्दर्च् चेर्न्दॊऴुहु वार्। (कुऱळ् 691)

आग से न निकट न दूर, तापें जिस प्रकार।
चपल मन भूप से सलक, करो उसी प्रकार॥

* सलक - सुलूक, व्यवहार.

जिस तरह आग तापते समय आग के न निकट जाते हैं और न अधिक दूर, उसी तरह चंचल चित्त वाले राजाओं के साथ व्यवहार करना चाहिए।

71. குறிப்பறிதல்

कुऱिप्परिदल् - भाव समझना

அடுத்தது காட்டும் பளிங்குபோல் நெஞ்சம்
கடுத்தது காட்டும் முகம். (குறள் 706)

अडुत्तदु काट्टुम् पळिङ्गुपोल् नॆञ्जम्
कुडुत्तदु काट्टुम् मुहम्। (कुऱळ् 706)

स्फटिक समीप वस्तु को, करता प्रतिबिंबित।
मनुज का मुख भी करता, मनोभाव प्रकटित॥

अपने निकट की वस्तुओं को जिस तरह स्फटिक प्रतिबिंबित करता है उसी तरह किसी के मन के भावों को उसका चेहरा प्रकट कर देता है।

72. அவையறிதல்

अवैयऱिदल् - सभा की पहचान

அவையறிந்து ஆராய்ந்து சொல்லுக சொல்லின்

தொகையறிந்த தூய்மை யவர். (குறள் 711)

अवैयऱिन्दु आराय्न्दु सॊल्लुह सॊल्लिऩ्
तॊहैयऱिन्द तूय्मै यवर्। (कुऱळ् 711)

पावन लोग जो रखते, शब्द-शक्ति का ज्ञान।

सोच-समझकर सभा में, करें शब्द प्रदान॥

शब्द सामर्थ्य में चमत्कार विमल विद्वानों को चाहिए कि वे सभा में विराजे विद्वानों की प्रकृति जानकर उसके अनुकूल शब्दों का प्रयोग कर अपनी बात कहें।

73. அவையஞ்சாமை

अवैयञ्ञामै - सभा में निर्भीकता

கற்றாருள் கற்றார் எனப்படுவர் கற்றார்முன்
கற்ற செலச்சொல்லு வார். (குறள் 722)

कऱ्ऱारुळ् कऱ्ऱार् ऎऩप्पडुवर् कऱ्ऱार्मुऩ्
कऱ्ऱ सॆलच्चॊल्लु वार्। (कुऱळ् 722)

जो प्रभावी ढंग से, अपना अर्जित ज्ञान।

विज्ञ सभा में रख सके, विद्वानों में विद्वान॥

विद्वानों की सभा में अपने अर्जित ज्ञान को प्रभावक ढंग से बताने में, जो भाषण-दाता सक्षम है वही वक्ता विद्वानों में विद्वान माना जाता है।

74. நாடு

नाडु - राष्ट्र

பிணியின்மை செல்வம் விளைவின்பம் ஏமம்

அணியென்ப நாட்டிற்கிவ் வைந்து. (குறள் 738)

पिणियिऩ्मै सॆल्वम् विळैविऩ्बम् एमम्
अणियॆऩ्ब नाट्टिऱ्किव् वैन्दु। (कुऱळ् 738)

निर्व्याधि, कोष, सुख व शांति, औ' धान्य-समृद्धि।

तथा सुरक्षा ये पाँचों, देश की अलंकृति॥

* अलंकृति - आभरण, आभूषण.
कहा जाता है कि नीरोगता, अक्षय कोष, धान्य-समृद्धि, सुख-शांति तथा सुरक्षा ये पाँचों देश केलिए अलंकरण होते हैं।

75. அரண்

अऱण् - दुर्ग

மணிநீரும் மண்ணும் மலையும் அணிநிழல்
காடும் உடையது அரண். (குறள் 742)

मणिनीरुम् मण्णुम् मलैयुम् अणिनिऴल्
काडुम् उडैयदु अरण्। (कुऱळ् 742)

खुला मैदान, सघन वन, मणि सम नीर अपार ।
वही दुर्ग होता जहाँ, हो पर्वत ये चार॥

स्फटिक सा निर्मल जल, समतल मैदान, पर्वत श्रेणियाँ, शीतल छाया के सुंदर वन आदि इन चारों से युक्त होना ही सुदृढ़ दुर्ग है।

76. பொருள்செயல்வகை

पॊरुळसॆयल्वहै - अर्थ संचय विधि

செய்க பொருளைச் செறுநர் செருக்கறுக்கும்
எஃகுஅதனிற் கூரியது இல். (குறள் 759)

सॆय्ह पॊरुळैच् चॆरुनर् सॆरुक्कऱुक्कुम्
ऎह्हुअदऩिऱ् कूरियदु इल्। (कुऱळ् 759)

कर खूब धनार्जन जो, करे रिपु-गर्व दूर।
धन से बढ़ पैनी *कोय, तलवार नहीं क्रूर॥

*कोय-कोई
धन-संपत्ति का अर्जन खूब करना चाहिए। अपने शत्रु के अहंकार को नष्ट करने वाली तलवार उससे पैनी और कोई नहीं।

77. படைமாட்சி

पडैमाट्चि - सैन्य का महत्व

மறம்மானம் மாண்ட வழிச்செலவு தேற்றம்
எனநான்கே ஏமம் படைக்கு. (குறள் 766)

मऱम्माऩम् माण्ड वऴिच्चॆलवु तेऱ्ऱम्
ऎऩनाऩ्गे एमम् पडैक्कु। (कुऱळ् 766)

शौर्य, मान, विश्वास्य व, सदाचार भी जान।

सेना के लिए चारों, उत्तम गुण हैं मान॥

* मान - स्वाभिमान; विश्वास्य - राजा के प्रति विश्वसनीयता; सदाचार - पूर्ववर्ती विजयी सैन्य की पारंपरिक वीरता का पालन करना.

वीरता, स्वाभिमान, पूर्ववर्ती विजयी सेना की शौर्य-परंपरा का अनुगमन करना और राजा का विश्वास पात्र होना ये चारों सेना के श्रेष्ठ गुण हैं।

78. படைச்செருக்கு

पडैच्चॆरुक्कु - सैन्य गंभीरता

பேராண்மை என்பது தறுகண்ஒன்று உற்றக்கால்

ஊராண்மை மற்றதன் எஃகு. (குறள் 773)

पेराण्मै ऎन्बदु तऱुकण्ऒन्ऱु उऱ्ऱक्काल्

ऊराण्मै मऱ्ऱदन् ऎह्हु। (कुऱळ् 773)

रिपु से *संगर सधैर्य, उत्तम पौरुष जान।

संकट में शत्रु का हित, पौरुष तीक्ष्ण मान॥

*संगर-संग्राम, युद्ध

दुश्मन का मुकाबला करने की बहादुरी उत्तम कोटि का पौरुष माना जाता है। मगर संकट का अवसर आने पर शत्रु की सहायता करना पौरुष की चरम सीमा मानी जाती है।

79. நட்பு

नट्पु - मैत्री

உடுக்கை இழந்தவன் கைபோல ஆங்கே

இருக்கண் களைவதாம் நட்பு. (குறள் 788)

उडुक्कै इऴन्दवन् कैपोल आङ्गे

इडुक्कण् कळैवदाम् नट्पु । (कुऱळ् 788)

ज्यों ही *कछौटा खिसके, थामे जैसे हाथ।

त्यों मित्र खतरे में हो, झट से देना साथ॥

*कछौटा- अधोवस्त्र

कमर का वस्त्र खुलने से जैसे हाथ स्वत: आगे बढ़कर वस्त्र को थाम लेता है वैसे ही मित्र पर संकट आने पर तुरन्त जाकर उसके साथ रहकर कष्ट दूर करना ही मित्रता है।

80. நட்பாராய்தல்

नट्पाराय्दल् - मैत्री की परख

கேட்டினும் உண்டுஓர் உறுதி கிளைஞரை

நீட்டி அளப்பதோர் கோல். (குறள் 796)

केट्टिनुम् उण्डुओर् उऱुदि इळैञरै
नीट्टि अळप्पदोर् कोल्। (कुऱळ् 796)
कष्ट आया तो उससे, होत है लाभ एक।
मैत्री को मापने का, माप दण्ड वह एक॥

संकट का आना भी एक प्रकार से हितकर होता है। क्योंकि संकट ही वह माप दण्ड है जिसके द्वारा मित्रता को मापकर उसकी परख समझी जा सकती है।

81. பழைமை

पऴैमै - चिरस्थाई मैत्री

பழைமை எனப்படுவது யாதெனின் யாதும்

கிழமையைக் கீழ்ந்திடா நட்பு. (குறள் 801)

पऴैमै ऎऩप्पडुवदु यादॆनिऩ् यादुम्
किऴमैयैक् कीऴिन्दडा नट्पु। (कुऱळ् 801)

जिगरी मैत्री से अगर, कोई करे अनिष्ट।

चिरस्थायी मैत्री वही, जो न माने अनिष्ट ।।

* जिगरी- घनिष्ठता.

चिरस्थायी मैत्री का लक्षण यही है कि मैत्री की घनिष्ठता के अधिकार से (मित्र द्वारा) अनुचित कार्य हो जाने पर भी ऐसा व्यवहार करें कि मित्रता में कोई विघ्न न पड़ जाए।

82. தீநட்பு

तीनट्पु - कुमैत्री

கனவினும் இன்னாது மன்னோ வினைவேறு

சொல்வேறு பட்டார் தொடர்பு. (குறள் 819)

कऩविऩुम् इऩ्ऩादु मऩ्ऩो विऩैवेऱु
सॊल्वेऱु पट्टार् तॊडर्बु। (कुऱळ् 819)

कथनी व करनी जिनकी, होती नहीं समान।

*ख़ाब में भी वह मैत्री, प्राण खायगी जान॥

*ख़ाब-सपना

जिन लोगों का कहना और करना समान नहीं होते, उन लोगों की मित्रता सपने में भी कष्टदायक होती है।

83. கூடாநட்பு

कूडानट्पु - कपटपूर्ण मैत्री

தொழுதகை யுள்ளும் படையொடுங்கும் ஒன்னார்

அழுதகண் ணீரும் அனைத்து. (குறள் 828)

तॊऴुदकै युळ्ळुम् पडैयॊडुङ्गुम् ऒन्नार्
अऴुदकण् णीरुम् अनैत्तु। (कुऱळ् 828)

अरि के जुड़े हाथों में, ज्यों छिपा हो हथियार।
त्यों मानो रिपु बहाए, आँसू की वह धार॥

* धार - धारा, हथियार की तेज (आँसू की वह धारा ऐसी है जिस में तलवार की तेज की तरह कपट छिपा हो).

इस दोहे का अर्थ है कि विनयी होकर शत्रु का नमन करना और सहानुभूति दिखाते हुए आँसू बहाना दोनों पर विश्वास नहीं करना चाहिए।
प्रणाम करते हुए शत्रु के दोनों हाथों के बीच में, छिपाया हुआ हथियार हो सकता है। वैसे ही शत्रु के बहाए आँसू में भी मन का भीतरी छल-कपट छिपकर रह सकता है।

84. பேதைமை

पेदैमै - मूढ़ता

பேதைமை என்பதுஒன்று யாதெனின் ஏதம்கொண்டு
ஊதியம் போக விடல். (குறள் 831)

पेदैमै ऎऩ्बदुऒऩ्ऱु यादॆऩिऩ् एदम्कॊण्डु
ऊदियम् पोह विडल्। (कुऱळ् 831)

कही जाय वह मूढ़ता, जो करे यों कार्य।
छोड़ लाभ का काम खुद, कर ले हानि-कार्य॥

लाभदायक कार्यों को छोड़कर अपने लिए हानिकारक कार्य जो करता है, उस व्यक्ति का यह काम उस की मूढ़ता ही कही जाती है।

85. புல்லறிவாண்மை

पुल्लऱिवाण्मै - मिथ्याहंकार की मूढ़ता

உலகத்தார் உண்டென்பது இல்லென்பான் வையத்து
அலகையா வைக்கப் படும். (குறள் 850)

उलहत्तार् उण्डॆऩ्बदु इल्लॆऩ्बाऩ् वैयत्तु
अलहैया वैक्कप् पडुम्। (कुऱळ् 850)

जिस के अस्तित्व को जग, 'है' कहलाता जान।
जो इसे न माने उसे, मानो प्रेत समान॥

संसार के लोग जिन तथ्यों के अस्तित्व पर विश्वास करके सप्रमाण कहते हैं उसे नकारने वाले मूर्ख जनों को मानव शरीर में भूत मानकर लोग उनकी उपेक्षा करते हैं।।

86. இகல்

इहल् - विभेद (परायापन)

இகலென்ப எல்லா உயிர்க்கும் பகலென்னும்
பண்பின்மை பாரிக்கும் நோய். (குறள் 851)

इहलॆऩ्ब ऎल्ला उयिर्क्कुम् पहलॆऩ्ऩुम्
पण्बिऩ्मै पारिक्कुम् नोय्। (कुऱळ् 851)

मन के विभेद-भाव को, बुध कहते हैं रोग।
जो होने न देता है, सब जीवों में योग॥

* विभेद-भाव – फूट का भाव, पार्थक्य – अलगाव.

सुधी जन कहते हैं कि मन में जो विभेद-भाव (फूट का भाव) उत्पन्न होता है वह जीवों को मिलकर रहने न देकर उनमें पार्थक्य बढ़ाने वाला एक अवांछनीय रोग बन जाता है।

87. பகைமாட்சி

पहैमाट्चि - शत्रुता का प्रभाव

வலியார்க்கு மாறுஏற்றல் ஓம்புக ஓம்பா
மெலியார்மேல் மேக பகை. (குறள் 861)

वलियार्क्कु माऱुएऱ्ऱल् ओम्बुह ओम्बा
मॆलियार्मेल् मेह पहै। (कुऱळ् 861)

बलवानों से न भिड़ना, करके उनका बैर।
लाभ उठा, ना छोड़ना, कमजोरों का बैर॥

अपने से बलवानों से दुश्मनी कर उनका सामना नहीं करना चाहिए। अपने से जो निर्बल होते हैं उनकी शत्रुता छोड़े बिना सामना करते हुए फायदा उठाना चाहिए।

88. பகைத்திறம் தெரிதல்

पहैत्तिऱम् तॆरिदल् - शत्रु-शक्ति की पहचान

பகையென்னும் பண்பி லதனை ஒருவன்
நகையேயும் வேண்டற்பாற்று அன்று. (குறள் 871)

पहैऎऩ्ऩुम् पण्बि लदऩै ऒरुवऩ्
नहैयेयुम् वेण्डऱ्पाऱ्ऱु अऩ्ऱु। (कुऱळ् 871)

रिपुता नामक बुराई, असभ्य गुण है जान।
हँसी-खेल में भी ना, वांछनीय है मान॥

शत्रुता संस्कारविहीन एक बुराई है। हँसी-विनोद के अवसर पर भी इसका उपयोग वांछनीय नहीं है।

89. உட்பகை

उट्पहै - आन्तरिक शत्रुता

பெரியாரைப் பேணாது ஒழுகின் பெரியாரால்

பேரா இடும்பை தரும். (குறள் 892)

पॆरियारैप् पेणादु ऒऴुहिऩ् पॆरियाराल्

पेरा इडुम्बै तरुम्। (कुऱळ् 892)

महान पुरुषों के प्रति, निरादर व्यवहार।

करे तो उन से होगा, भीषण ताप अपार॥

* ताप - दुख, दर्द.

सक्षम महान पुरुषों के प्रति निरादर पूर्ण व्यवहार करने से उन महान पुरुषों के द्वारा अत्यधिक अमिट दुख प्राप्त होंगे।

90. பெரியாரைப் பிழையாமை

पॆरियारैप् पिऴैयामै - बड़ों कि अवहेलना न करना

பெரியாரைப் பேணாது ஒழுகின் பெரியாரால்

பேரா இடும்பை தரும். (குறள் 892)

पॆरियारैप् पेणादु ऒऴुगिऩ् पॆरियाराल्

पेरा इडुम्बै तरुम् । (कुऱळ् 892)

महान पुरुषों के प्रति, निरादर व्यवहार।

करे तो उन से होगा, भीषण ताप अपार॥

* ताप - दुख, दर्द.

सक्षम महान पुरुषों के प्रति निरादर पूर्ण व्यवहार करने से उन महान पुरुषों के द्वारा अत्यधिक अमिट दुख प्राप्त होंगे।

91. பெண்வழிச் சேறல்

पॆण्वऴिच् चेऱल् - नारी-वश होना

மனைவிழைவார் மாண்பயன் எய்தார் வினைவிழைவார்

வேண்டாப் பொருளும் அது. (குறள் 901)

मऩैविऴैवार् माण्पयऩ् ऎय्दार् विऩैविऴैवार्

वेण्डाप् पॊरुळुम् अदु। (कुऱळ् 901)

नारी पर जो आसक्त, उनको नाहीं सिद्धि।

कर्तव्य पालन चाहे, जो तज दे यह बुद्धि॥

* नारी - पत्नी; यह बुद्धि - नारी पर आसक्त रहने का यह गुण.
पत्नी पर आसक्ति के कारण, जो उसके इशारे पर नाचता है वह व्यक्ति उत्तम सिद्धियाँ नहीं पा सकता। जो कर्तव्य पालन की चाह रखते हैं उन लोगों के लिए यह गुण अवांछनीय है।

92. வரைவின் மகளிர்

वरैविऩ् महळिर् - वार वनिताएँ

அன்பின் விழையார் பொருள்விழையும் ஆய்தொடியார்

இன்சொல் இழுக்குத் தரும். (குறள் 911)

अऩ्बिऩ् विऴैयार् पॊरुळ्विऴैयुम् आय्तॊडियार्
इऩ्सॊल् इऴुक्कुत् तरुम्। (कुऱळ् 911)

प्रेम मूलक चाह न वह, पर है धन की चाह।

हूर उसका मधुर वचन, आखिर लेता आह॥

* हूर - सुंदरी; आह लेना - सताना.
सहज प्रेम न करते हुए केवल धन के लिए स्नेह का दिखावा करने वाली सुंदरियों की मीठी बोली आखिर दुख देने वाली है।

93. கள்ளுண்ணாமை

कळ्ळुण्णामै - मद्यपान न करना

கள்ளுண்ணாப் போழ்தில் களித்தானைக் காணுங்கால்

உள்ளான்கொல் உண்டதன் சோர்வு. (குறள் 930)

कळ्ळुण्णाप् पोऴ्दिल् कळित्ताऩैक् काणुङ्गाल्
उळ्ळाऩ्कॊल् उण्डदऩ् सोर्वु। (कुऱळ् 930)

जब नशे में खुद न रहे, मद-मस्त को निहार।

पिये सुध-बुध खोने पर, क्यों ना करे विचार॥

पियक्कड़ व्यक्ति जब नशे में नहीं रहता तब शराब पिये हुए अन्य किसी व्यक्ति की दुर्दशा देखकर भी क्या वह मद्यपान से होने वाली बुराई पर विचार नहीं करेगा?

94. சூது

सूदु - जुआ

வேண்டற்க வென்றிடினும் சூதினை வென்றதூஉம்

தூண்டில்பொன் மீன்விழுங்கி யற்று. (குறள் 931)

वेण्डऱ्क वॆन्ऱिडिनुम् सूदिनै वॆन्ऱदूउम्

तूण्डिल्पॊन् मीन्विऴुङ्गि यऱ्ऱु। (कुऱळ् 931)

तजो जुआ यदि विजय हो, तुम्हारे ही अधीन।

जय भी वह काँटा तुल्य, जिसे निगलता मीन॥

* मीन - मछली.

जीतने की गुंजाइश होने पर भी जुआ खेलने का शौक मन में नहीं होना चाहिए। जुए में प्राप्त विजय उस काँटे के समान है, जिसे आहार समझकर मछली निगल जाती है।

95. மருந்து

मरुन्दु - औषध

மாறுபாடு இல்லாத உண்டி மறுத்துண்ணின்

ஊறுபாடு இல்லை உயிர்க்கு. (குறள் 945)

माऱुबाडु इल्लाद उण्डि मऱुत्तुण्णिन्

ऊऱुबाडु इल्लै उयिर्क्कु। (कुऱळ् 945)

*देहानुकूल जो करे, पथ्याहार का भोग।

प्राण-संकट के अनेक, दूर रहेंगे रोग॥

*देहानुकूल - शरीर के अनुकूल; * पथ्याहार - उपयुक्त आहार; प्राण-संकट - प्राण को संकट में डालने वाले शरीर की प्रकृति के अनुकूल उपयुक्त भोजन, वह भी उचित मात्रा में यदि ग्रहण करें तो प्राणों को संकट में डालने वाली बीमारियाँ कभी उत्पन्न नहीं होंगी।

96. குடிமை

कुडिमै - कुलीनता

இல்பிறந்தார் கண்ணல்லது இல்லை இயல்பாகச்

செப்பமும் நாணும் ஒருங்கு. (குறள் 951)

इल्पिऱन्दार् कण्णल्लदु इल्लै इयल्बाहच्

चॆप्पमुम् नाणुम् ऒरुङ्गु। (कुऱळ् 951)

त्रिकरण-ऐक्य व लज्जा, दो गुण-गान महान।

कुलीनों को छोड़ अन्यों, में नहीं मिले जान॥

* त्रिकरण-ऐक्य - तटस्थता का संस्कार, मन वचन कर्म तीनों का ऐक्य भाव; लज्जा - कुकर्म करने से शर्म करना; कुलीन - उच्च कुल का सज्जन.

तटस्थता का संस्कार, लज्जा आदि ये दोनों गुण कुलीन व्यक्तियों को छोड़कर अन्य किसी में सहज संभव नहीं है।

97. *மானம்*

माऩम् - आत्म - सम्मान

மயிர்நீப்பின் வாழாக் கவரிமா அன்னார்

உயிர்நீப்பர் மானம் வரின். (குறள் 969)

मयिर्नीप्पिन् वाऴाक् कवरिमा अऩ्ऩार्
उयिर्नीप्पर् माऩम् वरिन्। (कुऱळ् 969)

बाल कटा चमरी-मृग, जैसे छोड़े प्राण।

उसके सम नर प्राण दें, रक्षा-हित स्वाभिमान॥

* (कहा जाता है कि चमरी-मृग (सुरागाय) जिसकी पूँछ के बाल का चँवर बनाया जाता है, वह अपनी पूँछ पर इतना अभिमान रखता है कि वह अपनी पूँछ का एक बाल खो देने पर अपना प्राण तज देती है।). जैसे चमरी-मृग अपने शरीर से एक भी रोम हटा दिया जाए, तो अपने प्राण त्याग देता है वैसे ही स्वाभिमानी व्यक्ति अपने गौरव को हानि पहुँचने पर अपने प्राण त्याग देता है।

98. *பெருமை*

पॆरुमै - महानता

பிறப்பொக்கும் எல்லா உயிர்க்கும் சிறப்பொவ்வா

செய்தொழில் வேற்றுமை யான். (குறள் 972)

पिऱप्पॊक्कुम् ऎल्ला उयिर्क्कुम् सिऱप्पॊव्वा
सॆय्तॊऴिल् वेऱ्ऱुमै यान्। (कुऱळ् 972)

जन्म से मानव सारे, होते एक समान।

पर कर्म से गुण विशेष, कभी न जान समान॥

जन्म की दृष्टि से सभी मनुष्य समान ही होते हैं। मगर उनके कर्म के ऊँच-नीच की भिन्नता के कारण उनके गुण की विशिष्टता समान नहीं होती।

99. *சான்றாண்மை*

साऩ्ऱाण्मै - गुण संपन्नता

ஆற்றுவார் ஆற்றல் பணிதல் அதுசான்றோர்

மாற்றாரை மாற்றும் படை. (குறள் 985)

आऱ्ऱुवार् आऱ्ऱल् पणिदल् अदुसाऩ्ऱोर्
माऱ्ऱारै माऱ्ऱुम् पडै। (कुऱळ् 985)

*बरियार का महान बल, विनयशीलता जान।
जो अरि की शत्रुता का, नाशक होती जान॥

*बरियार-बलवान, बलिष्ठ;
विनयशीलता पराक्रमियों की ताकत है। यह सज्जनों का वह साधन है, जो अपने शत्रुओं को शत्रुता से मित्रता में बदल देता है।

100. பண்புடைமை

पण्बुडैमै - शिष्टाचार

அரம்போலும் கூர்மைய ரேனும் மரம்போல்வர்

மக்கட்பண்பு இல்லா தவர். (குறள் 997)

अरम्पोलुम् कूर्मैय रेऩुम् मरम्पोल्वर्

मक्कट्पण्बु इल्ला दवर्। (कुऱळ् 997)

यद्यपि तीक्ष्ण बुद्धि हो, रेती के सम मान।

मानवीय संस्कार बिन, वह नर पेड़ समान॥

रेती के समान तीक्षण बुद्धि वाले क्यों न हो, पर उस में मानवीय गुण का अभाव रहा, तो वह मनुष्य रूप में केवल पेड़ के समान है।

101. நன்றியில் செல்வம்

नऩ्ऱियिल् सॆल्वम् - निष्फल धन

வைத்தான்வாய் சான்ற பெரும்பொருள் அஃதுஉண்ணான்

செத்தான் செயக்கிடந்தது இல். (குறள் 1001)

वैत्ताऩ्वाय् साऩ्ऱ पॆरुम्पॊरुळ् अह्दुउण्णाऩ्

सॆत्ताऩ् सॆयक्किडन्ददु इल्। (कुऱळ् 1001)

घर भरकर संचयन कर, यदि न करे उपभोग।

मृत्यु बाद उस धन का, क्या ही हो उपयोग॥

* उपभोग करना - उपयोग करना, काम में लाना.

गृह भर में अपार धन-संपत्ति का संग्रह करके रखने वाला व्यक्ति उसका उपयोग किए बिना मर जाए तो उसके संचित धन से क्या फायदा है?

102. நாணுடைமை

नाणुडैमै - लज्जाशीलता

கருமத்தால் நாணுதல் நாணுத் திருநுதல்

நல்லவர் நாணுப் பிற. (குறள் 1011)

करुमत्ताल् नाणुदल् नाणुत् तिरुनुदल्

नल्लवर् नाणुप् पिऱ। (कुऱळ् 1011)

*पाप से लज़्जित होना, है लज्जा का सुरूप।

कुलवधु की लज़्जा होती, कुछ दूजा ही रूप॥

*पाप-कुकर्म;

कुकर्म करने से लज्जित होना ही लज्जाशीलता है। सुन्दर कुलवधुओं में होने वाली स्वाभाविक लज्जा कुछ और होती है। (कुऱळ् *निंद्य कर्म करने से लज़्जित होना ही कुलीनों की लज़्जाशीलता होती है। रूपसी कुल वधुओं में जो हया होती है वह कुछ और प्रकर की होती है।)

103. குடிசெயல்வகை

कुडिसॆयल्वहै - वंशोत्कर्ष-संरक्षण

கருமம் செயஒருவன் கைதூவேன் என்னும்

பெருமையில் பீடுடையது இல். (குறள் 1021)

करुमम् सॆयऒरुवन् कैदूवेन् ऎन्नुम्

पॆरुमैयिल् पीडुडैयदु इल्। (कुऱळ् 1021)

‘कर्म से पीछे न हटूं, कुल के हित कर्तव्य’।

इस यत्न सम श्रेष्ठता, नहीं यही मन्तव्य॥

* मन्तव्य - अभिमत, विचार.

‘कुल के हित के लिए अपने कर्तव्य-दायित्व से कभी भी मैं पीछे नहीं हटूँगा’ कहकर जो इसका प्रयास करता है, उस प्रयास से बढ़कर कोई और श्रेष्ठता नहीं है।

104. உழவு

उऴवु - कृषि

சுழன்றும்ஏர்ப் பின்னது உலகம் அதனால்

உழந்தும் உழவே தலை. (குறள் 1031)

सुऴऩ्ऱुम्एर्प् पिऩ्ऩदु उलहम् अदऩाल्

उऴन्दुम् उऴवे तलै। (कुऱळ् 1031)

अन्यों में घूर्ण यह जग, खेती अधीन जान।

यद्यपि श्रमपूर्ण हो, खेती उत्तम मान।

* अन्यों में - अन्य कई धंधों में या धंधों के पीछे; घूर्ण - घूमता हुआ, पीछा चलता हुआ.

कई व्यवसायों के पीछे घूमे फिर भी यह संसार कृषि पर ही आश्रित रहता है। इसलिए बड़ा कठिन परिश्रम करना पड़े फिर भी कृषि ही अति उत्तम व्यवसाय है।

105. நல்குரவு

नल्हुरवु - दरिद्रता

இன்மையின் இன்னாதது யாதெனின் இன்மையின்

இன்மையே இன்னா தது. (குறள் 1041)

इऩ्मैयिऩ् इऩ्ऩादतु यादॆऩिऩ् इऩ्मैयिऩ्
इऩ्मैये इऩ्ऩा ददु। (कुऱळ् 1041)

पूछो यदि दारिद्र सम, पीड़क कौन महान।

दारिद्र समान पीड़क, दारिद्रय ही जान॥

* दारिद्र – दारिद्रय, दरिद्रता; पीड़क - दुखद, पीड़ा या दुख देने वाला.

यदि पूछा जाए कि दरिद्रता के समान दुख देनेवाली महान वस्तु कौन-सी है, तो इसका उत्तर मिलेगा कि दरिद्रता के समान दुख देने वाली महान वस्तु दरिद्रता ही है।

106. ***இரவு***

इरवु - याचना

இரக்க இரத்தக்கார்க் காணின் கரப்பின்

அவர்பழி தம்பழி அன்று. (குறள் 1051)

इरक्क इरत्तक्कार्क् काणिऩ् करप्पिऩ्
अवर्पऴि तम्पऴि अऩ्ऱु । (1051)

मांगने जो योग्य हों, उनसे माँगो दान।

गोपन-दोष उनका है, तेरा दोष न जान॥

* गोपन-दोष - छिपाने का दोष (धन होने पर भी न देने के विचार से छिपाकर 'नाहीं कहकर' असमर्थता प्रकट करना).

जो दान देने में समर्थ हों उनके पास जाकर दान माँगना बुरा नहीं है। अगर वे अपने पास का धन छिपाकर दान देने से इनकार कर दें तो इसमें दोष उनका ही होगा न कि याचक का।

107. ***இரவச்சம்***

इरवच्चम् - याचना का भय

இரந்தும் உயிர்வாழ்தல் வேண்டின் பரந்து

கெடுக உலகியற்றி யான். (குறள் 1062)

इरन्दुम् उयिर्वाऴ्दल् वेण्डिऩ् परन्दु

कॆडुह उलहियऱ्ऱि याऩ्। (कुऱळ् 1062)

विधि के स्रस्टा लिखे यदि, दान मांग नर खाय।

मारा-मारा फिरे वह, सर्वनाश हो जाय।।

* विधि के स्रस्टा - भाग्य का निर्माण करने वाला ब्रह्मा.

विश्व की श्रृष्टिकर्ता यदि यह नियति बनावे कि कोई भीख मांगकर ही जीवन चलाएँ तो ऐसा भाग्य-निर्माता भी स्वयं इसी तरह याचक बनकर दर-दर फिरे और नष्ट हो जावे।

108. கயமை

कयमै - नीचता

மக்களே போல்வர் கயவர் அவரன்ன
ஒப்பாரி யாம்கண்டது இல். (குறள் 1071)

मक्कळे पोल्वर् कयवर् अवरऩ्ऩ
ऒप्पारी याम्कण्डदु इल्। (कुऱळ् 1071)

मनुज रूप में नीच भी, दीखे एक समान।
नर छोड़ अन्यत्र न यह, दीखे रूप विधान॥

* विधान - व्यवस्था.

देखने में नीच लोग भी अन्य मनुष्यों की तरह ही दीखते हैं। इस तरह एक ही रूप में दो अवस्थाओं के रूप-सादृश्यता दीखना केवल मानव में ही संभव है। यह अन्यत्र देखने को नहीं मिलता।